

❀ दिवाकर-रश्मियाँ ❀



संग्राहक —

श्री अशोक मुनिजी

शास्त्रिण रत्न" जन सिद्धान्त विद्यारण्य



प्रकाशक —

श्री दिवाकर दि ज्योति फार्मालय
मेवाड़ी बाजार, प्यावर (राज)

२ श्री धार श्री राठोड़ यकील
रविवार पठ मासिक सिद्धी



સમ્પાદક-
શ્રી અશોક મુનિજી મ

‘સાહિત્ય રત્ન’ જૈન સિદ્ધાંત વિશારદ
૨ ૨૬ ૧

સમ્પાદક

શ્રી કનૈયાલાલજી લોઢા
૨ ૨૬ ૨

પ્રકાશક-
શ્રી દિવાકર દિ ઉયોતિ કાર્યાલય

મથાફો બાજાર, શ્વાપર (રાજ)
૨ શ્રી આર વી રાઠોધ વકીલ

રવિવાર પઠ નાસિક સિદા
૨૬

“ निवेदन ”



प्रस्तुत ग्रंथ पाठकों के समक्ष उपस्थित करते हुए अत्यन्त प्रसन्नता हाती ह। इस ग्रंथ में प्रातः स्मरणीय गुरुदेव श्री चौधमलजी म मा के प्रवचन में उपलब्ध सूक्तियों का संकलन है। जनता गुरुदेव से “जन दिवाकर” नाम से ही अधिा परिचित है। वस्तुतः निवाकरजी दिवाकर ही थे। दिवाकर व दशन से जस कमल मिल दृष्टता है वस ही आपके दशन व प्रवचन श्रवण से हृदय कमल मिल जाता था। दिया कर की प्रभा में अंधकार दूर भागता है वस ही आपके प्रवचन का प्रभाव से अज्ञान का अंधकार दूर भागता था तथा जनता में स्वतः ही दुःखसना, दुर्गुणो, व कुरङ्गियों के त्याग की प्रेरणा जागृत होता थी। आपके द्वारा कराये गये सामूहिक त्याग के स्मृति-चिह्न धर्मो के रूप में आज भी अनेक नगरों में निक्षिप्त है।

आपके व्यक्तित्व से आचार का उत्कृष्टता, विचार की विराट्ता, स्वभाव की सरलता, वाणी की मधुरता चलवती थी। हिन्दू मुसलमान बौद्ध ईसाई आदि विभिन्न धर्म का अनुयायी आपके सपके में आया उसने आपका अत्यधिक आभाषा पाया और अपने ही गुरु आभाषा की प्रभा से प्रभावित

संपादक -

श्री अशोक भनिजी म

साहित्य रत्न 'चैन मिठान विरारद'

✽ ✽ ✽

सम्पादक

श्री कन्हैयालालजी लोढ़ा

✽ ✽ ✽

प्रकाशक -

श्री दिवाकर दि उयोति कार्यालय
मेवाड़ी बाजार, व्यावर (राज)

३ श्री आर वी एठोड वकील
रविवार पठ नासिक सिदा

✽ ✽ ✽

मुद्रक -

पं वसन्तीलाल नलवाया

जैनोदय प्रेस, रतनाम

✽ ✽ ✽

“ निवेदन ”

७७६६

प्रस्तुत ग्रन्थ पाठकों के सामने उपस्थित करते हुए अत्यन्त प्रसन्नता हाजी ह। इस ग्रन्थ में प्रातः स्मरणीय गुरुदेव श्री चौधमलजी म मा व प्रदानों में उपलब्ध मूर्तियों का संग्रह है। उनका गुरुदेव से 'जन दिवाकर' नाम से ही अधिक परिचित है। अस्तुतः निवाकरजी दिवाकर ही थे। दिवाकर व दशा मे जग बमल निम उठता है बने ही बापके दशा व प्रवचन श्रवण से हृदय बमल मिल जाता था। दिवाकर की प्रभा में अग्रकार दूर भागता है वग ही बापके प्रवचनों व प्रभा से अज्ञान का अग्रकार दूर भागता था तथा जाता व रत ही दुष्टताओं दुर्गुणों, व पुच्छिया व त्याग की प्रवृत्ति जागृत हो। थी। आपने द्वारा कराये गये सामाजिक त्याग के स्मृति-चिह्न दशा व रूप में आता था अनेक नगरों में विद्यमान है।

आपके व्यक्तिगत व आचार का उद्घुष्टता दिवाकर की विरागता स्वभाव का सम्मता याणी की मधुरता श्रवणतो था। हिन्दू भुगतमान बीड, ईसाई जाति दिगी भी धर्म का अनुयायी आपका सपन में आया उमने आपमें अंगीरित प्रभा का पाया और अपने को जग जामा की प्रभा में प्रभावित

पाया । आपकी बाणी से ज्ञानामृत भरता था । नेत्रों से कणा
की शीतल सुगन्ध ज्योति धारा बहती थी । प्रवरनों में विश्व-
कल्याण की सरिता प्रवाहित होती थी । आपकी छाया में
माने वाला ध्यात ताप व सताप की गर्मी को शांत करने
वाली शीतलता का अनुभव करता था । आप धर्म के दूत तो
थे ही । साथ ही कलम के धनी मानव-स्वभाव के चित्ते
दया के अवतार अधमों के उद्धारक एवं माणुस्य की सारा
मूर्ति थे ।

आपका व्यक्तित्व जितना प्रभावशाली वक्तव्य भा
उतना ही प्रभावशाली था । आपकी वक्तृत्व शैली सरल, सरल
व यम स्पर्शी थी श्रोताओं का चुम्बक के समान आकर्षित करती
थी । आप जीवन के हर पक्ष की इस ढंग से व्याख्या करते थे
कि श्रोताओं को ऐसा अनुभव होता था कि माना उन्हीं के
मन का समाधान किया जा रहा है ।

आपके प्रवचनों में गभीर सिद्धान्तों का भी अत्यंत
सरल भाषा व सुगम शैली में समझाया गया है । प्रत्येक प्रवचन
प्रभावशाली प्रेरणा प्रदायक एवं रोचक हुआ अंतःकरण को
छूना हुआ चलता है । प्रवचन इतने मधुर, सरल व हृदय
स्पर्शी है कि एक बार श्रवण प्रारम्भ कर देने पर सब तक उन्हें
झाड़ने का मन नहीं होता है जब तक कि वे पूरे पद नहीं लिख
जाते हैं । श्रवण समय पाठक आनन्द में निमग्न हो जाते हैं ।

आपके प्रवचनों में जीवन की दुःख-दशाओं एवं उलझनों
हुई गुर्रिया से मुक्ति पाने का पथ-प्रदर्शन बड़ी ही सरल

सूक्तियां से किया गया है। उन सूक्तियों का सार प्रवचनों के प्रवाह में यत्र तत्र सूत्र रूप में मिलता है। उही सूत्रों व सूक्तियों का संक्षेप कर उक्त प्रस्तुत ग्रन्थ का रूप दिया गया है। इन सूक्तियों में जीवन के व्यापक अनुभवों का सार, नीति वाक्यों का निबोध, ज्ञान का तत्त्वोक्त संनिहित है। ये सूक्तियाँ माण-दशत से भरती ही हैं साथ ही निराशा और विपत्ति के क्षण में स्फुरणा, प्रेरणा एवं प्रबल बल भी देती हैं। जीवन की जटिल से जटिल समस्याओं की बात की बात में सुनिश्चिता देने की विश्वपता भी इन सूक्तियों में निहित है। सद्ग्रन्थों के सौन्दर्य पुष्टों को पढ़ने और सद्गुणों के घटा व्याख्यान श्रवण का जितना प्रभाव पड़ता है उससे भी अधिक प्रभाव डालने में समय गुरुत्व की सूक्तियाँ हैं। इनका प्रभाव सीधा हृदय पर पड़ता है जो तद्विस्तारण की भाँति सारे मन व मन की सृष्टि पर प्रफुल्लित कर देती है। ये सूक्तियाँ यद्गुणमूल्य मणि हैं, जिन्हें हृदय में सजोय रखने से अवसर आने पर अमूल्य निधि का काम देती है। ये विकारों का विनाश करने में अमोघ औषधि के समान हैं। ये सूक्तियाँ वे सीढ़ियाँ हैं जिन पर चढ़ कर स्वर्ग में अवसर में पहुँचा जा सकता है। यस्तुन ये सूक्तियाँ जीवन-व्यवहार में पग पग और पल पल पर पथ प्रदर्शन का काम देने वाली हैं पतन का गत में गिरने से बचाने वाली हैं उत्थान का शिखर पर पहुँचाने वाली हैं आशा उत्साह व प्रेरणा का संचार करने वाली हैं।

प्रस्तुत सङ्ग्रह में सूक्तियों का विषयवार वर्गीकरण किया गया है तथा इन्हें इस प्रकार चमक-बढ़ किया गया है कि

पाठको को प्रवाहमान निवध के पढ़ने जसी रसानुभूति होती रहे ।

प्रस्तुत ग्रन्थ की सूक्तियों का संकलन अभी तक प्रकाशित 'दिवाकर दिव्य ज्योतिया' के बीस भागों में से किया गया है इन सब भागों का प्रकाशन 'दिवाकर दिव्य ज्योति' कार्यालय व्यापक हो चुका है । इन प्रवचन पुस्तकों का संपादन समाज के माध्यम मूधम विद्वान श्री शोभाचन्द्रजी भारिलाल ने बड़ा ही सुंदर किया है । प्रस्तुत संकलन का संपादन व वर्गीकरण समाज के उदीयमान लेखक, गभीर चिंतक, व अनेक विषयों के विद्वान श्री कन्हैयालालजी जोड़ाने किया है । मने तो संकलन सेवा ही की है । मुझे आशा है कि जीवन-निर्माण में यह ग्रन्थ अत्यंत उपयोगी व बहुमूल्य प्रमाणित होगा । यह संकलन कसबन पड़ा है इसका निगम तो पाठक स्वयं कर सकेंगे ।

काठपुर

जन्माष्टमी

}

अर्कि-ग

अशोकमुनि जैन



दिवाकर-रश्मियां



-: दान :-

(१)

हिमी बभ्रु पर स खपी ममता उतार कर स्व गर
 १ व्याग व लिए उसे अग्निक कर बना नान कहलाता है । नान
 धम की मन्त्रिमा बड़ी विधात है ।

(१)

जा पन्ते बीया उमे धभी र्मा र्हे हा ओर जा धर
 यात्रागे ठग बाय स्वाश्रय । जा याणा ही नहीं वह क्या
 पाएगा ? अनन्य शान न त्त हाया ना अब दना आरभ करा,
 और यदि त्त हा ना दते समय एहसान न जतनाआ । यह मत
 साचो हि मै नान दार नानपाय पर एहसान कर रहा है ।

यत्किं यह विचार करो कि यह दान का अगाधार क्यों बना
 मूल पुण्य का अग्रमं २ रत्न है । तुम मरने के प्रति कर्तव्य
 करो । ऐसा भावना करने से तुम्हारे शरीर का फल बड़े गुणों
 प्राप्त हो जायेगा ।

(३)

मेरा सम्पत्ति आज तुम मिता है वह एक न एक
 दिन तो चला जायेगा ही । चला २२ पाप नहीं २२ गा ।
 फिर उस दिन २२ पाप से मेरा शरीर अस्वस्थ होगा नहीं
 बनना । परन्तु मेरे पास तो भाव है जो एक ही तरफ
 है और वह यही कि नु उद्धारभाव से, प्रमत्त दान दिये जा ।

(४)

वैष्णव भाषा में २ अक्षर हैं । उनमें से एक अक्षर नरक
 का विरोधी २ और दूसरा भाषा का विरोधी है । वह दो अक्षर
 हैं— ' द ' और ' ल ' । ' द ' का अर्थ है, मरने का और अभय
 का । यह मरने के विरोधी २ और ' लाभा ' ' लाभा '
 भाषा का विरोधी है अर्थात् धन लाभा वस्तु लाभा, स्त्री
 भाषा इस लाभा की लाभा से भाषा का विरोधी होता है ।

(५)

भाषा । वह दान समझने योग्य है कि दान देना
 उधार देना है और पाप करना बुरा है । इन दोनों का
 ही अर्थ है । जितना-जितना दान-पुण्य करोगे उतना

हो उनका पात्राग और जिनना-जिनना पाप रोगों उनका हो
उनका चुराना पन्ना ।

(८)

जान में ममत्व के योग का पत्र परापकार का भावना
हो ममत्व रूप में हानी चाहिए । कानि का कामना में प्रगति
हाकर बाह-कटू नून के लिए जा जान दिया जाता है वह
दान अशुद्ध हो जाता है । जो अपने जान का अधिक में अधिक
विज्ञापन चाहते हैं अथवा ममा-मात्र ग्राह्य में अपना
नाम छपा देल कर फूल नहीं समस्त । उनका इस प्रकार
कीर्ति जोर प्रतिष्ठा के लिए किया गया जान वमा फल प्रदान
नहीं करता जस कि करना चाहिए ।

(७)

मन्वा नेना ना ममता का त्याग करना है । ममता का
त्याग कर दिया तो फिर उसका खाना पान का कामना क्या
करत हो ? अगर कामना करत हो तो तुम्हारा जान अशुद्ध हो
वह मन्वा दान नहीं है । दान पर मिलना तो अवश्य ही मगर
पान की कामना करने में उनका नहीं मिलना जिनना मिनना
चाहिए । अथवा विवदवान पुण्य एमा विचार मता करत ।

(८)

भादया ! या ना मभी दान उत्तम है किन्तु उन मद्र
में ज्ञान की दृष्टि में आहारदान का विषय मन्वा है मसानी
।

जाओ के प्राणा का आहार आहार है। आहार तना एक प्रकार
 से जीवन देता है। आहार के अभाव में जीवन नहीं टिक
 सकता और धर्म ब्रियान् करन का भी अवकाश नहीं रहता।

(६)

माना जन समस्त दाना में अमय ज्ञान का उत्तम कहता
 है। अमय ज्ञान की तुलना में न माया का दान ठहरता है, न
 भूमि का दान ठहरता है और न धन का ज्ञान ही ठहर
 सकता है।

माय भूमि और धन यात्रि मय बभ्रुण प्राणी के पीछे
 है। प्राण रह जाये तो न मय बभ्रुण का मूल्य है। प्राण न
 रहे तो मय ब्रूया है। अतएव स्पष्ट है कि प्राणी के सामने
 प्राण ही प्रधान वस्तु है और इसलिए प्राण रक्षा करना अवश्य
 किसी का अभयज्ञान तना ही मय बह दान है।

(१०)

अभयज्ञान मय प्रकार के ज्ञान में उत्तम ज्ञान माना
 गया है। प्राणा की रक्षा अभयदान है और प्राण मयका मयम
 अधिक प्रिय होन है। जो वस्तु जिनका प्रिय है उसका नाम
 उतार है और महत्व पूर्ण जाना है। यही कारण है कि
 भगवान न स्वयं अभयज्ञान का मय ज्ञान में उत्तम कहा है।

(११)

गृहस्थ धन यात्रि पत्नी का मयय करता है। उन
 पर उनकी ममता भी होती है। अतएव ममता का त्याग करना

उग्रर मित्र जिन ह । उन पक्षों के उपासन जो मर्यादा
आदि में जाग्रत-ममत्ता आदि में उपासक हुए पापा का प्रसा
दन करने के लिए भी दान धर्म का मर्यादा करना आवश्यक है ।

(१०)

उपासक जो भामा के हाथ में लान नहीं दिया जाता ।
दान उपासना का लक्षण है । जिसमें यह लक्षण हागा उपास
धर्म के अन्तर्गत लक्षण भी गुरु या जाने है । उपासना के
साथ क्षमा निर्लोभता आदि गुण स्वयं लिन बने आते हैं ।

(११)

प्राप्तियों का लान लान निग्रह प्रयत्न अथवा दूसरे
पक्षों का दान देना जिससे जनता का ध्यान दूर हो सके,
पानपान कहलाता है । बहुत-से लोग मङ्गल बनाया नारियल
आदि की प्रभावना करते हैं मगर मन्त्रों प्रभावना जिन
प्राप्तियों के मर्यादा में फल हुए ध्यान का दूर करने में है ।

(१२)

लान देकर न पचात्ताप करना योग्य है न अभिमान
करना और न एहमान ममत्ता है । उचित है । वास्तव में
अभिमान या एहमान की बात भी क्या है किमान छन में बाज
बाकर अभिमान क्यों कर, एहमान किस पर कर उसने अपने
ही नाम के लिए बीज बाया है ।

(१५)

दान की जगह का अपना उदा म कर बना है । गीत
देवता का मा अपना मण्डल म करव उमक इज्ज काय कर
नेना ॥ । अनन्त तान गता मन्त्राय का उडा भागी गुण है ।

(१६)

जम उड का छाटा मा बीज अमीन में बोया जाता है
जिल्द पाना का मयाग पाशर कालान्तर में यह हजारों को छिपा
देने याता विशाल वक्ष बन जाता है उमी प्रसार आहार दान
दने से पुण्य का बीज भी विशाल रूप ग्रहण करके फल देता है ।

(१७)

दान दन म आप को किसी प्रकार की कठिनाई का
भासना करना पड़ता है । मा भी म यहा कहूंगा कि आप उस
कठिनाई का सहन करव मा दान दाजिए । दान क प्रभाव से
आपका कठिनाईया उमा प्रकार विलीन हो जाएंगी जिस
प्रकार प्रबल शक्ति क शक्त म शक्त का घटाए छिन्न भिन्न हो
जाती है । याद रखिए ज्ञान महान फलदायी होता है ।

(१८)

जा लोग धन-धन का महायन्त्र नहीं दत्त और पापियों
के सामने अपनी धनिया क झूट खोल देत है उ क्या कर रहे
हैं ? याद रखा व पथर का नाव पर बठ है और उनका
डूबने में देर नहीं लगता । उनका कही पता भी नहीं चलेगा ।

- शील :-

(१)

जिस वाय में ज्ञानमत्ता की प्राप्ति हो उसे गान्धर्व है ।
जो कुशल का भवन न करना हुआ मुतासिल का धारण करता
है वह सहज ही आयासमत्ता की परमांग रूप भवन्तों का
उत्पन्न करके अपने लक्ष्य का प्राप्त कर लेता है ।

(२)

जिसी प्राणी के साथ दान या वर विग्रह न करन
निवृत्ति है और अनुग्रह करना तथा ज्ञान करना प्रवृत्ति ५ ।
इस प्रवृत्ति और निवृत्ति के भवन में भीत का स्वभाव ही प्राप्त
होता है । शील रूपों रथ के यह भाग्य है । इन्हीं में शील
रथ अग्रसर होकर शीलवान को अनेक लक्ष्य तक पहुँचाता है ।

(३)

जगत्कल्पवृक्ष सभी शिल्लिक और अभिनविन पत्तियों
का दाता है उसी प्रकार जीवन में भी उमा इन्हीं पत्तियों को
प्राप्ति होता है ।

(४)

इस संसार में शील के समान शक्ति और विश्वास
दने की शक्ति किसी में भी नहीं है । इस बात में मा और
परलाक में भी शील से अनन्त शक्ति प्राप्त होती है ।

- तप -

(१)

जैसे सान म लमा हुआ मल आगे म मान का तपान
 हो कर हो जाता है, उसी प्रकार घनादि काल म आत्मा के ऊपर
 जो मनिमता पना हुई है वह तपस्या की आग से नष्ट हो
 जाती है । तपस्या आत्म गुणों का प्रधान कारण है ।

(२)

जैसे अग्नि के निर्मित स पापों को जलाना है और मूछ
 निराश्रित हो जाता है उसी प्रकार तपस्या की तीव्र अग्नि
 जब प्रज्वलित होती है तो कम मध मम्म हो जाता है और
 आत्मा मुख हो जाता है ।

(३)

तपस्या के इन्द्रियों का दमन होता है और मन का
 भी शांति होता है । इस स्थिति में ध्यान अस्त्र, स्थिर और
 अकण्ड होता है ।

(४)

याद रखना, राम को वश म करने का सबसे अधिक
 कारण हीर पण्ड उपाय तपस्या करना ही है । तपस्या किसे

बिना इन्द्रियो पर काब नही पाया जा सकता और न मन को ही बश में किया जा सकता है ।

(५)

जैसे जगत को जलाने में दावानल प्रयत्न है । दावानल को शांत करने में मेघ गतिगती है । और मघ को छिन्न भिन्न करने में वायु समर्थ होता है । उसी प्रकार धर्मों को व्यवहार करने में तपश्चर्या समर्थ होती ॥ ।

(६)

त्याग और तपस्या की दवा का सेवन करने से समस्त रोग-शोक दूर हो जाते हैं । ताव और निजारी जस रोग उसके पास भी नहीं फटक सकते । इस दवा का सेवन करने से निरजन पद की प्राप्ति होती है और अनन्त भय एव अन्यायाघ आनन्द भी प्राप्त होता है ।

(७)

लोग समझते हैं कि जग में वस्तुओं को जला देना यज्ञ है परन्तु नहीं, यज्ञ तपश्चर्या का नाम है जिसमें पापों को जला कर भस्म किया जाता है और जिसमें आत्मा नियन्त्रित होती है ।

(८)

जिसने मूखतावश भय माली है, वह उसके नशे से बचना चाहे तो दुनिया में एसा भी चीजें मीजते हैं, जिनके

सेवन से नशा नहीं चम्का । इसी प्रकार बहुत कमों का निष्कर्ष
 बनाने के लिए भी भगवान ने एक उपाय बनलाया है और वह
 उपाय है—तपश्चरण करना ।

(६)

कई लोग जप करते हैं और करते हैं—महाराज, हम
 जप करते-करते इतना कप हा गया मगर अभी तक कोई सिद्धि
 नहीं हुई । मगर उसे समझना चाहिये कि उसने जप तो किया
 है मगर जप के साथ तप नहीं किया । तप के बिना सिद्धि
 कैसे हो सकती है ? दुनिया में इसीलिए जप तप के साथ
 लगा है ।

(१०)

मसार में जिसने भी महारमा हा गये हैं और जिनको
 महिमा का जगत में विस्तार हुआ है उन सबने तपश्चरण
 किया था । तपश्चरण के बिना आज तक कोई भी पुण्य
 महारमा नहीं बन सका तो परमात्मा मनना तो दूर रहा ।

(११)

किसी भी महापुरुष का जीवन सीजिए-आपको तब
 में एक ही बात मिलेगी । मानो सबकी जीवनी एक है चक्र
 पर घूमती है । वह चक्र है तपस्या का । प्रत्येक महापुरुष के
 जीवन में तप का ही तज उद्भासित होता है । महापुरुष का
 परिचय भर्थात् तप का शक्ति का परिचय । तपस्या के प्रताप

ने महापुरुष का जन्म हुआ है । तब के प्रभाव में ही वह जन्म
 फिर नृत्य करके निरन्तर है ।

(१०)

प्राचीन उपाहरण मन्त्रों की ही गता, गृहस्था की
 मन्त्रों में भी गता है । पर तपस्या के प्रभाव का आज भी प्रत्यक्ष
 देखा जा सकता है । बलरत्ता में और दूसरे स्थानों में गांधीजी
 ने अन्न जीवा में कई बार उपवास किया । उन्होंने भोजन
 त्याग दिया । उनके प्रभाव में बठार से बठार और पापी से
 पापी मनुष्यों के हृदय भी बदल गये । उन्हें भी तपस्या के
 सामने झुकना पड़ा ।

(११)

स्वच्छाश्रय, पारमार्थिक दृष्टि से ब्रह्मा का महान् तप
 लेना तप है । तप का बहिष्कार करने का मतलब यह होगा कि
 जब कोई ब्रह्म दाय ना उस स्वच्छा श्रवण महान् न किया जाय ।
 सहन न करने मात्र से ब्रह्मा का ध्यान तो दूर नहीं जायगा
 तप की त्याग देने से महान् करने की शक्ति अत्यन्त बढ़ हो
 जायगा । एसी स्थिति में जीवा विना वनमय और नीला
 मय हो जायगा यह ब्रह्मा ही ब्रह्मा भवार्ह है ।

(१४)

भगवान् ने उपवास की तपस्या का महत्ता रा के लिए
 वाला तपो में अनन्त तप का सब म पढ़ते गिता है । गृहस्था

के लिए भी अष्टमी, चतुदशी और पक्षी क दिन उपवास करने का विधान है । अनशन करने से आत्मा की शुद्धि होती है, बर्मा की निजरा हाती है इन्द्रिया वा में हा जाती है, मन पर बाबू प्राप्त जिया जा सक्ता है, गान ध्यान में होन वाले प्रमाद को दूर रिया जा सक्ता है । इन सब लाभो को ध्यान में रसकर भगवान् साथकर न अनशन तप पर विनोय रूप से बल दिया है ।

(१५)

तपस्या म लौकिक और लोकोत्तर-दोनों प्रकार का फल प्रदान करने की प्रयत्न शक्ति है । लौकिक प्रयोजन के लिए की गई तपस्या लौकिक काम को सिद्ध करती है और लोकोत्तर आध्यात्मिक प्रयोजन के लिए की जाने वाली तपस्या से लोकोत्तर प्रयोजन की सिद्धि होती है । मगर तपस्या कभी निष्फल नहीं जाती है ।



~ भावना ~

(१)

जिसकी जसी भावना होती ह, उस वसी ही सिद्धि मिलती ह ।

(२)

भाइयो ! जो चित्त की चपलता का निरोध कर देता है, मन का इधर उधर नहीं भटकने देता और जो आत्मा के गुणों में ही रमण करता ह, वह मनुष्य ससार सागर में पार हो जाता ह ।

(३)

मानसिक विचार ही मनुष्य को डुबाने वाले और उबारने वाले हैं । अगर आपका विचार शुद्ध होगा तो उच्चार भी शुद्ध होगा और विचार एवं उच्चार शुद्ध होगा तो आचार भी शुद्ध होगा ।

(४)

दान, शीत और तप के साथ भावना को जो अंत में स्थान दिया गया है वह इमीलिए कि दान आदि का फल

अन्त में भावना के अनुसार ही प्राप्त होता है। 'यादृशी भावना यस्य सिद्धिभवति तादृशी' जिसकी जमी भावना होती है, उसे उसी की वस्तु प्राप्त होता है। सद्भावना व बिना कोई भी क्रिया पूर्ण फलदायक नहीं होती।

(५)

मन चिन्तामणि रत्न म भी अधिक मूल्यवान् है। क्योंकि चिन्तामणि चिन्तित पदार्थ की रूढ़ि करती है परन्तु चिन्तन तो मन से ही किया जायगा ? मन न होगा तो किससे इष्ट पदार्थ का चिन्तन कराने ? चिन्तामणि की उपयोगिता की पहिचान कराने वाला भी मन ही है। अतएव मन उससे भी अधिक मूल्यवान् सिद्ध होता है। वह भाग्योदय से आपको सहज ही प्राप्त है फिर भी उसका दुरुपयोग क्या करते हो ? मन का दुष्प्रणिधान करके चिन्तामणि से बपाल काटने की अपेक्षा भी अधिक मूल्यवान् है।

(६)

सनाई यह है कि कोई किसी का मुख दुःख नहीं पहचान सकता। मनुष्य का मन ही उसके दुःख की सन्धि करता है और वही उसके मुख की उत्पत्ति कर सकता है। अतएव चक्र में घूमने वाले मन ही है।

(७)

केवल त्यागी का वेप धारण करने से वाय नहीं चलेगा, भोग न भागने मात्र से भी काम नहीं चलेगा, परम एव

गान के लिए तो मन का त्याग बनाना पड़ेगा । विपदा के त्याग के साथ ही साथ विपदा का वागना भी भी त्याग करना आवश्यक है । जब वागना दूर हो जाय तब तो त्याग की परिपूर्णता गमयनी चाहिए । वागना का दूर करना के लिए स्वाध्याय ध्यान विनियम मनन की आवश्यकता है ।

(७)

गुप्त ज्ञान गाल तथा और भावना आदि के रूप में कोई धर्म क्रिया करो उनके पत्र की वाछा मन करा । गवाम क्रिया करने में क्रिया के पक्ष में विपरायता और याना का जानी है और नियाम भाव तो क्रिया करने पर पूर्ण पत्र का प्राप्ति होती है ।

(८)

विन्नी भवन बच्चा का भी मुह में पकड़नी है और मुह का भा उगा मुह में पकड़ता है । गरनु दानों के पकड़ने में भावना का विनियम भद रहता है ।

(९)

नाई ! मन नू विदड का धारण कर । भल मंग रह । मूड मुडा ॐ या मिर पर जटा का भार धारण करके फिर । भल रिता अधरा गुफा में रह अथवा ऊँच पर्वत का चाली पर निवास कर । मन गिमा पर धासन जमा कर बट
 के सिद्धांतों का ज्ञान तोरा हृदय यदि

इसमें कुछ भी नहीं होना—जाना है । आत्मा का कल्याण तो तभी होगा, जब तू अपने हृदय को शुद्ध बनाएगा ।

(१०)

अगर सचमुच भलाई चाहते हो तो दिल को साफ करो । हृदय का पवित्र भावनाओं के जल में स्नान कराओ । तुम चाहे कहीं किसी भी तीर्थ में जाकर नहाओ, गंगा, यमुना, या पुष्कर में गोते मार आओ, किन्तु जब तक दिल साफ नहीं है तो आत्मा का कल्याण हानि वाला नहीं ।

(११)

मन के द्वारा किया हुआ पाप ही पाप कहलाता है । मन के सहयोग के बिना केवल शरीर द्वारा किया गया आचरण पाप नहीं । लोक व्यवहार में ही देखा । शरीर में जिस प्रकार शिवलिंग का आलिंगन किया जाता है उसी प्रकार पुत्रों का भी आलिंगन किया जाता है । शरीरिक क्रिया से कोई अन्तर नहीं होता, किन्तु मन में अन्तर होता है । यही कारण है कि दोनों की भावना में अन्तर होने से एक क्रिया लोक में दूसरी दृष्टि से देखा जाती है और दूसरी क्रिया दूसरी दृष्टि से । दोनों में कितना अन्तर है ? यह अन्तर मनोभावना के कारण ही है ।

(१२)

बड़ा समझना है कि अगर यह बीमार अन्न खाएगा तो इसका रोग बढ़ जायगा ऐसा समझ कर वह रोगी का अन्न

नहीं खाने देता । दूसरा आदमी द्वेषभाव से, किसी को भूखा रख कर मार डालने के विचार से निमी को अन्न नहीं खाने देता । मोटे तौर पर दोनों का काम समान मालूम होता है । पर दोनों अन्न खाने से रोकने वाला की भावना में बड़ा भिन्न है । एक जीवित रखने की भावना से रोकता है और दूसरा मार डालने की भावना से रोकता है । जब दोनों की भावनाएँ बिल्कुल भिन्न-भिन्न ह—एक दूसरे से एकदम विपरीत हैं तो क्या दोनों को समान फल की प्राप्ति होगी ? नहीं ऐसा कदापि नहीं हो सकता । प्रकृति का राज्य में एका अधर नहीं है । जिसकी जसी भावना होती है इसकी वसा ही फल प्राप्त होता है । मुनिजन कल्पाप्य—भावना से प्रेरित होकर, पाप कर्मों का त्याग का उपदेश देते हैं अतएव उन्हें अन्तराय कर्म का बाध नहीं होता, धरन् उपदेश देने से उनके पूर्ववत् कर्मों की निजरा होती है ।

(१३)

भावना के भेद से एक सरीखे कार्य के फल में भी महान् भिन्न पड़ जाता है । अतएव सच्चा समझदार और पण्डित वही है जो पापा से दूरकर अपनी भावना को पवित्र और पुण्यमय रखता है । अतःकरण में कपाय को जागृत नहीं होने देता । कदाचित् कोई मौखिक कार्य करना पड़ता है तो भी चेतना रख कर अधिक पाप से बचने का प्रयत्न करता है ।

(१४)

मरदेकी माता हाथी के हीन पर गृहस्थ वप में बंठा थी । गृहस्थ के वप में थी तो मरने और कपट भी नहीं होगी फिर भी भावना शुद्ध हो जान के कारण उन्हें उन्ही समय केवल भान हो गया और मोक्ष भी प्राप्त हो गया । क्या स्वर्ग उनका भाग था ? नहीं । भाइया ! पाप धन में नहीं, मां में है ?

(१५)

मन को जीतने में ही असली जीत है । और मन के हारने में हार है । तुम ब्रत बरा, उपवास बरा कुछ भी बरा, जब तक मन को मैं जीत लोग सुझारा उद्वेग सपत्त न दूंगा ।

(१६)

मन को जीत लेने पर पांचा इन्द्रियो पर विजय प्राप्त हो जाती है ।

(१७)

भात्रना को पवित्र में
प्रकार का भा दानि
को पवित्र नहीं बनाते
सकते हो तो अपवित्र
भला नहीं चाहते तो कम
परा-पाई खच क्रिय मन
इसमें ही अपना कल्याण

भाइयों ! याद रखो किसी बिगो का अतिष्ठ न करो और न मोचो । दूसरा का अतिष्ठ करना अपना ही अनिष्ठ करना है । दूसरे का अतिष्ठ मोचन में उनका अतिष्ठ हो ही जायगा, यह बात यह सबना है । परन्तु मोचने वाले का अतिष्ठ होने में क्या मात्र भी शक नहीं है । श्री कृष्ण का भारत के लिए कम न रहित प्रयत्न बिना परन्तु कृष्णजी का बात भी सारा न हुआ । जिस भारत का प्रयत्न किया था उगी के हाथों में कम भारत गया अतएव किसी बिगो का बुरा मत माना ।

अनुम विचार करने में विचार करने वाले का ही अतिष्ठ होता है । बिल्दा के कहने या राहुत से छाया तो नही सचता किसी के चाहने से कोई अतिष्ठ या अनुमि नही हो सकता । हमारे विचारों दूसरों का बुरा चाहने वाला अपना बुरा न्यय ही कर सता है ।

। आसक्त्यान् करोष तां वया वाञ्छामे ? प्रथम तो दुःख भागत समय है आसक्त्यान् के कारण यह दुःख अत्यन्त दुःखप्रतीत होगा उम्मीद उम्मीद बढ़ जायगी । दूसरे मुद्दामें सहन शक्ति का ह्रास हो जायगा । तीसरे, अतिष्ठ के लिए पुन अनुम तमों का वध होगा । अतएव जब दुःख सता अनिवाय है तो हिम्मत रागों लड़ना स्वर्ग मम भाव का मत मोचो ।

(२१)

जगत के प्रत्येक जीव के माथ पुण्य और पाप लग हुए हैं । और पुण्य पाप का मुख्य आधार जीव के परिणाम हैं । आएँ इस बात का निरन्तर ध्यान रखना चाहिए कि कुर विचार कभी उत्पन्न न हो सक ।

(२२)

मनुष्य का जीवन यथाथ में उभरने आन्तरिक भावनाओं से ही परिचालित होना है अथवा यो कहना चाहिए कि वह भावनाओं का ही वास्तव रूप है । भावना से ही नरक का निर्माण होता है और भावना में ही स्वर्ग की सृष्टि होती है ।

(२३)

दम ममय तू झकड़ता फिरता है । कहता है-मैं मेरा कुछ धिगाड़ सकता हूँ । मैं ऐसा हूँ, मैं बसा हूँ । थोड़े से पुद्गल इकट्ठे कर लिय कि बड़बड़ान लगा और अपने में नहीं समाने लगा । पर आग को भी कुछ साधता है कि नहीं ? यह पूँजी तेरा उद्धार कर देगी ? ऊँची हवेली को छत तुम स्वर्ग में पहुँचा देगी ? नहीं, तारा उद्धार तेरी आत्मा से होगा । माँ को जीतने से ही तू पार लग सकेगा, अथवा नहीं ।

(४)

अथ अथ घर्माचरण करने के लिये कुछ द्रव्य खच करना पड़ता है या कष्ट उठाना पड़ता है, किन्तु अपनी भावना

असली लाल रंग चढ़गा तो बड़िया मलमल पर ही चढ़ेगा । उत्तम मलमल बेसरिया रंग में डालते ही सुंदर रंगी हुई दिखने लगती है, उसी प्रकार म्वच्छ हृदय वाले पर धम का सुंदर रंग चढ़ता है । जो मलमल के समान प्राणी है उन पर बीतराग देव की वाणी रूप बेसरिया रंग तत्काल ही चढ़ जाता है । किंतु जैसे मलिन वस्त्र पर रंग नहीं चढ़ता उसी प्रकार मलिन चित्त मनुष्य का मन भी धम के रंग में नहीं रंगता । बड़ा मुश्किल हो जाता है उनके चित्त पर धम का रंग चटना । इस रंग में गगन के लिए पुष्प की आवश्यकता पड़ती है ।

त्रिफला की फार्मी सेना सुखद नहीं जान पड़ना किंतु जब पेट खिंच जाता है और भोजन की रुचि बढ़ जाती है और तबीयत हल्की महमूस होती है तो जितनी प्रसन्नता होती है इसी प्रकार अन्तःकरण का शुद्ध करने के लिए त्रिफला के समान जब रत्नत्रय का सेवन किया जाता है तपस्या और समय की आराधना की जाती है तब कष्ट होता है किन्तु उस कष्ट को कष्ट न समझकर जो समभाव रखते हैं उन्हें केवल पान आदि फल की प्राप्ति होने पर किनारा आनंद मिलता है ।

मन सब पर सवार रहता है, परन्तु मन पर सवार होने वाला कोई विरमा ही माई का लान होता है । मगर

धन्य वही ह और मुन्नी भी वही ह जो अपने मन पर सत्रार होता है ।

(३२)

मन भले ही बहुत चपल, ढीठ और बिगडल क्या न हो, चाखिर वह बशीभूत किया जा सकता है । आत्मा में उसका काबू में लाने की शक्ति है । आत्मा की शक्ति के सामने वह पराजित हो जाता है । आत्मा स्वामी है, मन उसका अनुचर है । मगर आत्मा ही जब अपने स्वरूप को भूलकर मन का चर बन जाता है तब मन उसे दुःखा और भयानक यात्राओं के मार्ग में ले जाता है । अतएव जो आत्महित व अभिप्रायी है, उसे अपने कर्तव्य का विचार करना चाहिए । अभ्यास के द्वारा मन पर नियंत्रण स्थापित करना चाहिए ।

(३३)

चित्त जब कभी कुमार्ग का ओर जाने लग, उसी समय उसे रोक दो जगें गलन रास्ते पर जाने का उद्यत हुए घाट की लगाम खींच ली जाती है । ऐसा करने से धीरे-धीरे वह आपके अधीन हो जायगा और फिर कुमार्ग की ओर जाना ही पसन्द नहीं करेगा ।

(३४)

लाल में कहावत है—निकम्मी लुगाई को नात जान का सूतता है । यह कहावत चाहे जसी हो पर मन के सम्बन्ध में

ठीक बैठता है। निवृत्ता मन पाप की ओर दौड़ता है। मन
एक इस काम में लगाय रखना योग्य है।

(३५)

मन कभी बकार नहीं रहता। यह एसा भूत है कि
कभी क्षण भर भी ग्वाली नहीं रहता अतएव उसे उत्तमाये
रत्न के लिए धर्म के आश्रम (उद्यान) में निवरण करना
उचित है। मन की आत्म-चिन्तन तथा चिन्तन, श्रुति परि-
पालन और आरह अनुप्रे गाओ के चिन्तन आदि में लगाय
रखना चाहिये।

(३६)

अगर आप चाहते हैं कि आपका मुखमण्डल दमनीय
बने सुन्दर हो तो आप अतः करण में पवित्र भावनाएँ उत्पन्न
कीजिए। आपका भावना जितनी उच्चकोटि की होगी, मुख
मण्डल का सलीमापन भी उसी उच्चकोटि का होगा।

(३७)

अपने मन में जैसे विचार हाने, वैसे दूसरे के विचार
हो जाएंगे। अगर आपके हृदय में जगत के समस्त जीवा के
प्रति भैत्री का भाव उत्पन्न हो गया है और शत्रुता के लिए
किसी भी जाने में जरा भी अवकाश नहीं रहा है तो समझ
लीजिए कि सारा जगत आपका भी मित्र भाव में देखेगा।
आपको किसी से भय स्नान की आवश्यकता नहीं है।

(३८)

' भलाई के विचार बड़ा कठिनार्थ से आते हैं लेकिन घुरे विचार आन में दर नहीं लगती । महल बनाने में वर्ष आत जात है मगर मिराने में क्या देर लगती है !

(३९)

भावना के प्रभाव से कवल-ज्ञान और मोक्ष की भी प्राप्ति हो सकती है । अतएव जा घने राते करो और जा न बन सके उसके लिए भावना रखो तो भी आपका सम्प्राप्य हाया ।

(४०)

अद्यपि पानी में कटुकता नहीं है, तथा उत्पन्न करने का गुण नहीं है, और मारने की शक्ति भी नहीं है फिर भी अफीम के मसग के कारण उसमें यह सब उत्पन्न करने की शक्ति आ जाती है । इसी प्रकार दान, शील तप, भावना, दत्त, प्रयाग्यान आदि स्वभावतः अशुद्ध नहीं हैं, किन्तु अशुद्ध अद्वैत के कारण-समय क्षेप से उनमें अशुद्धता आ जाती है ।

(४१)

जिसकी धारणा जैसा बन जाती है, वह सभी घटनाओं को और सभी तथ्यों का उसी रूप में ढाल लेता है । जिसकी आँखा पर उसे जगत् का चदमा लगा हाया उसे सब वस्तुएँ उमीरमयी दिखाई देने लगेंगी ।

(४०)

प्रायः लोग भय से प्रसिद्धि हाजर ही आपन मन में भूत-प्रेत की कल्पना कर लेने ह और उनकी भावना का भूत हो उह शक्ति पहुँचाता है । भावना में बड़ी शक्ति है । वह भूत न होन पर भी भूत की खड़ा कर देतो ह, मनुष्य की विह्वल बना देती ह और एसी स्थिति उत्पन्न कर देता है, जमी कि वास्तविक भूत भी नहीं पना कर सकता । यह एक प्रकार का मानसिक दुबलता ही है ।

(४१)

पाप कर्म का उपाजन मन से हो किया जाता है, तन स मही । जिस शरीर से पत्नी का आलिंगन किया जाता है, उगी शरीर से पुत्री का भी आलिंगन किया जाता ह । मगर दोनों क आलिंगन में भावना का कितना महान अंतर होता है ।

(४४)

सोठ काम सूंति है जब खाटे दिन आ जाते ह ।



-: अहिंसा :-

(१)

दया धर्म के बिना धर्म क्या ? मनुष्यों का मनुष्य
दया है । जहाँ दया नहीं वहीं धर्म नहीं । दया व विनाश व
लिण है धर्म सब धर्मों का विधान है ।

(२)

जैसे माँप गुन चाहते हैं वैसे ही धर्म प्राणी भी गुन
चाहते हैं । और जहाँ आप दुःख से बचना चाहते हैं उन्हीं
प्रकार अन्य समस्त प्राणी भी दुःख से बचना चाहते हैं ऐसा
समयकर धर्म प्राणियों के प्रति व्यवहार करना । यही धर्म
धर्म है । यही गानि का भाव है ।

(३)

मन से, वचन से और कारीर से किसी का पीटा मन
पचाओ । निदयित रूप से समझना कि दूसरों को पीडा पहुँ
चाना अपने लिए दुःखों का बीज बोना है और दूसरा का दुःख
मिटाना अपना दुःख मिटाना है ।

(४)

धर्म व्यवहार करना चाहते हो तो दूसरों से मुक्ति

बनाओ । दुख से बचना चाहते हो तो दूसरा का दुख से बचाओ । अपना कल्याण चाहते हो तो दूसरों का कल्याण करो ।

(२)

हं भग्य जीवो ! यदि तुम मुखा रहना चाहते हो तो किसी के मुख में बाधक मत बना । यदि तुम भयन लिए दुःख को अनिष्ट समझते हो तो दूसरों को दुःख न पहुँचाओ । जिस प्रकार स्वयं जागृत रहना चाहते हो उसी प्रकार सभी प्राणी जागृत रहना चाहते हैं । कोई मरना नहीं चाहता । मत किसी के प्राणों का वियोग भय करो ।

(६)

अगर आपके अनन्तरण में दया और प्रेम का स्रोत बढ़ता होगा तो वह आपके विरोधी के घन्तकरण को भी शीतल बना देगा । आपकी अहिंसा का करना आपके प्रतिपक्षी के हृदय के कर और शोध को माग को युक्त देगा ।

(७)

जब साधक पूरी तरह निर्द्वेष हो जाता है तो प्रतिपक्षी पर भी उसका प्रभाव पड़ता है । जैसे किसी को क्रुद्ध देखकर सामने वाले के हृदय में भी शोध का आवेग आ जाता है उसी प्रकार किसी को करुणाशील देख कर सामने वाले के हृदय में भी करुणा का संचार हो जाता है । कदाचित् करुणा का संचार न भी हो तो भी उसकी प्रेरणा तो उपशान्त हो ही जाती है ।

(८)

मुखी होना चाहते हो तो दूसरा को मुखी करा शांति चाहत हो तो दूसरा का शांति पहुँचाओ दुःखों से बचना चाहते हो तो दूसरा का दुःख से बचाओ, कष्ट नहीं चाहते हो तो दूसरा को कष्ट मत दो ।

(९)

जो वस्तु जितनी अधिक प्रिय है उससे अधिक होने में उतना ही अधिक दुःख होता है । यह बनलाने की आवश्यकता नहीं । आप अपने ही अन्तःकरण से पूछ सकते हैं कि आपको सर्वाधिक प्रिय क्या है ? प्राणों से अधिक प्रिय दूसरी कोई वस्तु नहीं । प्राणों की रक्षा करने के लिए आप सभी कुछ त्याग सकते हैं । यही कारण है कि प्राणों का नाश करना सबसे बड़ा पाप माना गया है ।

(१०)

आप अपने जीवन के लिए दूसरों की सहायता लेते हैं और उस सहायता का अभाव में जीवित नहीं रह सकते, तो क्या आपका भाव यह कर्तव्य नहीं है कि आप भी दूसरों की सहायता करें ? जो दूसरा से लेता ही लेता है और बदले में कुछ देता नहीं है, वह दीवारियाँ हैं । वह दुनिया में हिकारत की निगाह से देखा जाता है । उसे लोग घृणास्पद समझते हैं । क्या तुम ऐसे बनाना चाहते हो ?

मृत्यु तो वही जोत मारता है जो मृत्यु से डरता नहीं है और जो जानन और मरण का समान भाव में घपनाते के नियम तयार रहता है । मृत्यु का यह जोत सबका है जो छात्र बड़े समस्त प्राणियों की घपन निमित्त मर जाने वाली मृत्यु से घाता रहता है जो स्वयं मर कर भी दूसरा की मृत्यु को बचाता है, वही मृत्यु-विजना का सबका है । मौत की बन्धना से ही बाँधने वाला सब मौत से सब बच सकता है ? जो अपना प्राण का रक्षा के नियम दूसरे के प्राण हरण करता है । वह अपनी मौत को जीता देकर निश्चय बुझाता है, उस एक का नहीं बार बार मौत का गिनार बनना पड़ता है ।

किसी को अधिकार नहीं कि वह तुम्हारे प्राण रानी परम धन को लूट उसी प्रकार तुम्ह भी अधिकार नहीं कि तुम किसी के प्राणों के दाहक बनो । सब हम नीति का अनुसरण करोगे तो सभी सुखी रहोगे । इसका विरुद्ध व्यवहार करोगे तो भूतल बर्तन गाना बन जायगा । समार अशांति का घर हो जायगा । हिंसा चाहे पेट पालने के लिए की गई हो, चाहे जिह्वा नानुपता के उत्तीभूत होकर की गई हो चाहे धर्म के नाम पर की गयी हो हर हालत में पाप है । और हिंस्र तथा हिंसा दोनो को अशान्ति और यथा देने वाली है ।

(१३)

भाइया ! पर प्राणी व प्राणों का घपन ही प्राणा व समान समझा । किमी व प्राण मन लूटो । जीआ और जीने दो । इस मुनहरे सिद्धांत का यदि ससार स्वीकार कर सके तो जगत में अप्रुव शान्ति का संचार हो जाय । फौज, पुलिस, कारागार यायालय, और वकील की आवश्यकता ही किमी को न रह जाय ।

(१४)

जम आग से आग शांत नहीं होती, उसी प्रकार हिंसा से हिंसा शांत नहीं होता हिंसा का दमन करने के लिए भगवती अहिंसा की आवश्यकता है ।

(१५)

अहिंसा अत्यंत सरल है । इसमें छद्म-कपट के लिये रस्ती भर भी गु जाइस नहीं है । वह विशुद्ध है और उद्योग करने वाली है सभी धर्मों का अहिंसा धर्म में ही समावेश हो जाता है । ठीक उसी प्रकार जैम हाथी के पर में सभी के परो का समावेश हो जाता है ।

(१६)

दूसरा को मुख पहुंचाआग तो स्वयं मुखी हाआग । जब तुम अपने घर बना हलुआ पडाम में भजत हो तो पढीसी भी बदल में तुम्हारे महा भजता है । इसी प्रकार तुम दूसरो को मुख दोग तो स्वयं भी मुख पावाग ।

(१७)

मनुष्य में अग्निय शक्ति है ता यह शक्ति दुबल की सहायता में व्यय होनी चाहिए न कि उह ससाने में, उनका गला घोटने में ।

(१८)

हमारे जीवन में अहिंसा का बड़ा ही महत्त्वपूर्ण स्थान है । अहिंसा ही हमारा पालन पोषण और रक्षण करती है । सत्य यह है कि अहिंसा जीवन है और हिंसा मृत्यु है । यही कारण है कि धर्म में अहिंसा को सर्व प्रथम स्थान दिया है । वास्तव में अहिंसा के महत्त्व की वस्तुते हुए उसे यह प्रधान स्थान मिलना ही चाहिए ।

(१९)

जैसे अपने हित की महत्त्व देत हों, उसी प्रकार दूसरों के हितों की भी महत्त्व दो । यही अहिंसा का संदेश है । इसी में जगत की शांति निहित है । जुल्म और अत्याचार किसी भी रूप में अशुभ नहीं है ।

(२०)

अहिंसा जीवन है अमृत है और हिंसा मृत्यु है, जहर है । अहिंसा का त्याग करना जीवन का ही त्याग करना है ।

(३८)

मगई व विचार यही कठिनाई में आते हैं लेकिन
दूर विचार ध्यान में दूर नहीं प्यारी । महत्त्व बनाने में धर्म
सात जात है मकर मिरान में क्या दूर लगती है ।

(६)

भावना के प्रभाव में बचन-पान और माध की भी
प्राप्ति हो सकती है । अतएव जो बन मा करा और जो न
बन मक उसके लिए भावना रखना ता था आपका
बन्वाय हाथ ।

(४०)

यद्यपि पानी में बटुबना नहा ह नशा उत्पन्न करने का
गुण नहीं है, और मारन का पवित्र भी नहीं है फिर भी अफीम
के मसख के कारण उनमें यह सब उत्पन्न करने की शक्ति आ
जाती है । इसी प्रकार दान, ज्ञान मन, भावना दत्त, प्रत्या
न्याय आदि स्वभावान् अशुद्ध नहीं है किन्तु अशुद्ध धर्म का
कारण-ममत्वं दोष में उनमें अशुद्धता आ जाती है ।

(४१)

जिसका धारणा जस बन जाता है, वह सभी घटनाओं
का और सभी तथ्यों का उसी रूप में डाल रक्ता है । जिसकी
धार्मिकों पर जमे रण का चरमा लया होगा उसे सब बन्तुएँ उभी
रण की शिगाई देने लगेंगी ।

(४०)

प्रायः लोग भय से प्रसिद्ध होकर ही अपने मन में भूत-प्रेत की कल्पना कर लेते हैं और उनकी भावना का भूत ही उन्हें दृष्टि पहुँचाता है। भावना में बड़ी शक्ति है। वह भूत में हानि पर भी भूत को लड़ा कर देता है, मनुष्य को विह्वल बना देती है और ऐसी स्थिति उत्पन्न कर देती है, जमा कि वास्तविक भूत भी नहीं पैदा कर सकता। यह एक प्रकार की मानसिक दुबलता ही है।

(४१)

काप कर्म का उपाजन माँ से ही किया जाता है, ताँ से नहीं। जिस शरीर से पत्नी का आलिंगन किया जाता है उसी शरीर से पुत्री का भी आलिंगन किया जाता है। मग दोनों के आलिंगन में भावना का कितना महान् अंतर होता है

(४४)

सोच काम सुझन है जन खाटे दिन आ जाते हैं।



बनाओ । दुःख में बचना चाहते हो तो दूसरा का दुःख सह
बचाओ । अपना कल्याण चाहते हो तो दूसरे का कल्याण करो ।

(२)

हे भय जीवा ! यदि तुम सुप्ता रहना चाहते हो तो
किसी के सुप्त में बाधक मत बना । यदि तुम अपने लिए दुःख
को अनिष्ट समझते हो तो दूसरा को दुःख न पहुँचाओ । जिस
प्रकार स्वयं जीवित रहना चाहते हो उसी प्रकार सभी प्राणी
जीवित रहना चाहते हैं । कोई मरना नहीं चाहता । अतः
किसी के प्राण का वियोग मत करो ।

(६)

अगर आपके अन्तःकरण में दया और प्रेम का स्रोत
रहता होगा तो यह आपके विरोधी के अन्तःकरण का भी शीतल
बना देगा । आपकी अहिंसा का सरना आपके प्रतिपक्षी के
हृदय के घर और क्रोध की आग को बुझा देगा ।

(७)

जब साधक पूरी तरह निर्द्वेष हो जाता है तो प्रतिपक्षी
पर भी उसका प्रभाव पड़ता है । उसे किसी का क्रुद्ध देखकर
सामने वाले के हृदय में भी क्रोध का आवेग आ जाता है उसी
प्रकार किसी को करुणाशील देख कर सामने वाले के हृदय में
भी करुणा का संचार हो जाता है । कदाचित् करुणा का
संचार न भी हो तो भी उसकी क्रूरता तो उपशांत हो ही
जाती है ।

(८)

सुखी होना चाहते हो तो दूसरा को सुखी करो शान्ति चाहत हा ता दूसरा का शान्ति पहुचाआ दुःखा स बचना चाहने ही तो दूसरा का दुःख से बचाओ । कष्ट नही चाहने हो ता दूसरो को कष्ट मत दो ।

(९)

जो वस्तु जितनी अधिक प्रिय है उससे अधिक हमने म उतना ही अधिक दुःख होता ह । यह बतलान का आवश्यकता नही । आप अपने ही धर्म करण से पूछ सकते हैं कि आपका सर्वाधिक प्रिय क्या है ? प्राणों से अधिक प्रिय दूसरी कीई वस्तु नही । प्राणा की रक्षा करने के लिए आप सभी कुछ त्याग सकते है । महा कारण है कि प्राणा का नाश करना सबसे बडा पाप माना गया है ।

(१०)

आप अपने जीवन के लिए दूसरो की सहायता लेते हैं और उस सहायता के अभाव मे जीवित नही रह सकते तो क्या आपका भी यह वक्तव्य नही ह कि आप भी दूसरो की सहायता करें ? जो दूसरो से लेता ही लता ह और बदले में कुछ देता नही ह वह दीवालिया ह । वह दुनिया में हिकारत की निगाह से देखा जाता ह । उसे लोग धूणास्पद समझते हैं । क्या तुम ऐसे बनाना चाहते हो ?

मृत्यु को वही जीत सकता है जो मृत्यु से डरता नहीं है और जो जीवन और मरण को समान भाव से ग्रहण करने के लिये तैयार रहता है। मृत्यु को वह जीत सकता है जो छोट बड़ समस्त प्राणियों को अपने निमित्त मराने वाली मृत्यु से बचता रहता है जो स्वयं मर कर भी दूसरों की मृत्यु का बचाता है, वही मृत्यु-विजेता बन सकता है। मौत की कल्पना से ही कापने वाला कब मौत से बच सकता है ? जो अपने प्राणों की रक्षा के लिये दूसरे के प्राण हरण करता है। वह अपने मौत को 'योद्धा' देकर निकट बुलाता है, उसे एक बार नहीं, बार बार मौत का शिमार बनना पड़ता है।

बिस्ती को अधिकार नहीं कि वह तुम्हारे प्राण रूपी परम धन का लूट उसी प्रकार तुम्हें भी अधिकार नहीं कि तुम बिस्ती के प्राणों के ग्राहक बनो। सब इस नाति का अनुमरण करोगे तो सभी सुखी रहोगे। इसके विरुद्ध व्यवहार करोगे तो भूतल कल्ल भाना बन जायगा। ससार अनाति का घर हो जायगा। हिंसा चाहे पेट पालने के लिए की गई हो, चाहे जिह्वा लालुपना के लोभ से होकर की गई हो चाहे धर्म के नाम पर की गयी हो हर हालत में पाप है। और हिंस्र सदा शत्रु दानों को अशक्ति और 'यथा' देने वाली है।

(१०)

मनुष्य में अधिक शक्ति है तो वह शक्ति दुबली की सहायता में व्यय होनी चाहिए न कि उह सताने में, उनका गला घोटने में ।

(११)

हमारे जीवन में अहिंसा का बड़ा ही महत्वपूर्ण स्थान है । अहिंसा ही हमारा पालन पोषण और रक्षण करती है । मग्य यह है कि अहिंसा जोया है और हिंसा मीत है । यही कारण है कि धर्म में अहिंसा का सर्व प्रथम स्थान दिया है । वास्तव में अहिंसा के महत्त्व को वेगल हुए उसे यह प्रधान स्थान मिलना ही चाहिए ।

(१२)

जसे अपने हित को महत्त्व देते हो, उमी प्रकार दूसरो के हितो को भी महत्त्व दो । यही अहिंसा का मदेश है । इसी में जगत की शांति निहित है । जुल्म और अत्याचार त्रिती के हक में अच्छे नहीं है ।

(१३)

अहिंसा जीवन है अमल ह और हिंसा मत्यु है, जहर है । अहिंसा का त्याग करना जीवन का ही स्वात्मा करना ह ।

होती ही नहीं है। वह तो अपनी कायरता को अहिंसा के पदों में छिपाने का प्रयास करता है।

(२१)

अपनी हथेली पर घबकता हुआ अगर लेकर दूसरे पर फेंकने की इच्छा रखने वाला पुरुष मूख है। क्या पता है कि दूसरे पर वह गिरेगा भी या नहीं? मगर जो गिराना चाहता है उसका हथेली तो जल जाता रहेगी नहीं। इसी प्रकार दूसरों का भूरा साचन वाला भी मूख है। वह दूसरा का बुरा कर्म से पहला ही अपना दुःख कर लेता है। दूसरे का प्रपञ्चकुल के लिए अपनी नाक फटवाना बुद्धिमत्ता का काम नहीं है।

(२२)

अहिंसा व अहिंसा पर ही विचार कर देखिये। अहिंसा का अहिंसा करने का मनसब होगा—हिंसा की प्रतिष्ठा करना। तब क्या हिंसा के आधार पर मृष्टि चल सकेगी? मगर दूसरे की हत्या की ही किराक म रहे तो तब तक टिकेगा। आप इस कारण जिदा है कि दूसरा न आपका घात नहीं कर दिया है। इस प्रकार अहिंसा का बदोलन है आपका जिन्मा है। हिंसा मृत्यु है और अहिंसा जीवन है। मृत्यु के बल पर जा जाकर रहना चाहता है, उसकी बुद्धि की बलिदान है।

(७५)

यह श्लोक आज भी बहने हैं कि अपने स्थान-मीन और
एक धाराम व निष् किसी जाव का भारन, बाटने में कोई
दाप नहीं है । भादया । अगर इस निमम का सही मान
लिया तो इस भूतन पर धून की नन्दियाँ बहने लग । अपनी
मुक्त-मुक्ति का लिय सभी का भार छालना चाह्य । प्रत्येक
सदन तबल को भार छालन का तयार हो जायगा । एमी
ममानक स्थिति में मसार में क्या गान्ति रह सकेगी ? यह जा
अमन बन आज दिवाई देती है यह गव अहिंसा का ही प्रताप
है । जिस दिन यह विश्वास सब माधारण जनता के दिल में घर
जना लगा कि अपने सुख के लिए दूसरे का भागने-बाटने में
कोई दाप नहीं है । उमी तब यह पृथ्वी नरक के समान बन
जायगी । गनीमन यही है कि जब मात्र में करणा के कुछ न
कुछ वष रिचमान रहने हो है ।

(८)

मैं तो दावा करके कहता हूँ कि मानव जाति की
सर्वोच्च सभ्यता का विकास अहिंसा के विकास में ही
अन्तर्निहित है । अहिंसा में बड़कर धार बाँट सभ्यता नहीं हो
सकती और अहिंसा को छाड़ कर तो सभ्यता जती वस्तु हो
ही नहीं सकता । अतएव जिस व्यक्ति, समाज या राष्ट्र ने
अहिंसा की जितनी अधिक साधना की है, उसने अपनी सभ्यता
का उतना ही अधिक विकास किया है । अहिंसा सभ्यता की

वसूटी पर आज की दुनिया को जब हम बमने जाते हैं तो निराशा के सिवाय और क्या हाथ आता है ?

(२६)

दया व बिना ससार का प्राण नहीं है । साति की सैकड़ो योजनाएँ बनाई जाएँ, मगर व विफल ही होगी, अगर उनके मूल में दया नहीं होगी । क्योंकि साति का मूल आधार दया ही है ।

(३०)

कीचड़ को कीचड़ से धोने का प्रयास मत करो । लून के दाग को लून से धोने का प्रयत्न करना उपहासास्पद है । इसी प्रकार हिंसा जनित पाप बम के फल से बचने के लिए हिंसा को मत अपनाओ । दया माता की करुणामयी मुद्रा को अपने सामने रख कर ही कुछ करो । दया को बिसार कर काम करोगे तो अच्छा करन चलोगे और बुरा फल पाओगे । बररा और पाडा जैसे पंचेन्द्रिय जीवों की हत्या से किसी का बचाव होना सम्भव नहीं है ।

(३१)

अहिंसा व शस्त्र से बरी का नहीं बर का सहार किया जाता है और जब बर का सहार हो जाता है तो बरी मित्र बन जाता है । हिंसा बरी का नाश करने बर का बढ़ाती है । वह बर की अपरिमित परम्परा को जन्म देती है ।

(३०)

जर आप दूसरे का बुरा चाहें और बुरा करें तो आपका भरा बग हा सबता है। अनएव अगर अपना भला चाहते हो तो दूसरा का भला चाहो। हराम का माल खान की इच्छा मत करो। और धर्मदि का सम्पत्ति भी हड़पने की इच्छा न रख्या। मरीया का मन मनाया।

(३१)

वई लोग अपन दुख का प्रनीवार करने के लिए हिंसा का आश्रय लेते हैं। यदि मरा सड़का जीवित रह जायगा तो एक पाठा मारुंगा अथवा बकरा बड़ाऊंगा' इस प्रकार की मनीता मनाता है। अपने हाथ से हिंसा करने में ग्लानि होती है तो दूसरे से बह कर करवाता है। किन्तु इस प्रकार एक का जान लेने से दूसरे की जान बच जाती तो सत्य जीवित रहने का सरल उपाय पाकर कौन जीवित न रह नेता ? राजा महाराजा साखों जायो की हिंसा करना सयते हैं। मगर इस भूतल पर आज तक कोई सगरीर अमर नहीं रह गया।

(३४)

साग माताजी का जगत का माता मानते हैं, मय जीव धारियो का उनका पुत्र सम्यत है और फिर भी उनके ही सामने, उही के निमित्त, बारा, पाठा आदि उनके पुत्र के प्राण

लेते हैं ? क्या इससे कभी माता प्रमत्त हो सकती है ? क्या कोई भी माता अपने बच्चे का बलिदान चाह सकती है और उससे सन्तुष्ट हो सकती है ? शरणी जसी शूर समझी जाने वाली माता भी अपनी सत्तान की रक्षा करती है तो क्या सारे समार की माता उससे भी ज्यादा शूर होगी ? वह अपनी सत्तान की रक्षा नहीं चाहगी ? अवश्य चाहेगा । यही नहीं, अगर वह सच्ची माता है तो अपनी सत्तान का घात करने वाले से बदला तब रिना नहीं रहेगी ।

(३५)

हिस्तेने ही अपनी जन पहले की हुई हिंसा के फल में बचन के लिए फिर हिंसा का हा आचरण करता है । अर्थात् वे स्वयं का प्राप्त करने के लिए पशु बलि यज्ञ ह्रास आदि का आश्रय लेते हैं । किन्तु ऐसा करने वाले लोग गंभीर भूल करते हैं । जैसे खून से भिगा वस्त्र खून से ही साफ नहीं हो सकता, उसी प्रकार हिंसा आदि पापों के आचरण के द्वारा बोधे हुए धर्म हिंसा आदि से हा दूर नहीं हो सकते । पापों जाय पाप का आचरण करके शुद्ध नहीं हो सकता । आत्मशुद्धि के लिए पापों का त्याग करने की आवश्यकता है ।

(३६)

कोई भी धर्म हिंसा का विधान नहीं करता । 'हिंसा नाम भयदूषमो न भूतो न भविष्यति' हिंसा कभी धर्म नहीं हुई और न कभी होगी ही । हिंसा और धर्म में परस्पर विरोध

है। जो हिंसा है वह धर्म नहीं और जो धर्म है वह हिंसा नहीं। यह ब्रह्म धर्म के प्रपिण्ड की भा धोपणा है। एमी हालत में हिंसा करके धर्म की कामना करने बात साम क्या दया के पात्र नहीं हैं।

(३०)

मनुष्य भी प्राणी है और पशु पक्षी भी प्राणी हैं मनुष्य की बुद्धि अधिक विनम्रित है इस कारण उसे सब प्राणियों का बड़ा भारी कहा जा सकता है। पशु-पक्षी मनुष्य के छोट भाई हैं। क्या यह संभव है कि वह अपने कमजोर भाई के गले पर छुरा चलावे ? नहीं उन्हीं का याम रक्षण करना है भक्षण करना नहीं।

(३१)

अफसोस है कि जिन क्षत्रियों का योग्यता जगत् में विख्यात था और जो रणभूमि में शस्त्रहीन शत्रु पर भी आक्रमण नहीं करते थे, उन्हीं के बराबर आज बकरा और पांडा पर शस्त्र चलाते हुए गर्मिदा नहीं हात और फिर भी अपने क्षत्रिय हान का अभिमान करते हैं ? कितना अघ पतन हो गया है ? क्षत्रिय वीर अपना वीरता का विस्मृत कर बैठे हैं और कायरता के काम करके अपना बहादुरी जतलाने में संकोच नहीं करते ?

घर में मांस मदिरा आदि चीजें भण्डी होती तो मदिरा व वयो नहीं बढ़ाई जाती ? य मर्राय चीजें हैं, इस कारण तो यह मदिरा में नहीं जान दिया जाना । भाइयो ? जब यह चीज मर्रा में भी नहीं घुस मरती तो इनका तपन करने वाला यक्षुण्ट में कैसे घुस सकगा । थोड़ा दर क लिए यक्षुण्ट की बात जान राजिय । यह चीज इतनी अधिक हानिकारक है कि इस घरीर को भी नष्ट कर डालती है । इनका तपन करने वाले माता प्रपार की बीमारियों से पाहित होकर दुःख भोगने हुए मरते हैं । भाइयो ! यह अभय चीजें हैं । छाड़ने जाय हैं ।

जा बड़ गान है, बरतार जम सीध-साधे भात प्राणिमा का भी मांस खा जात है । बकर का पेट में डाल केते हैं, मछनी को हजम कर जाते हैं और ला-पीकर ठाकुरजी के सामन पड़ कर साष्टांग नमस्कार करत हैं । ये क्या यक्षुण्ट पा सकत हैं ? क्या ठाकुरजी एत हिसका, निदयो और जिह्वालोत्परो का स्वर्ग में भज दम ? घर में ऐसे लोग स्वर्ग में चले जावे तो मरक में बीन जाएगा, फिर तो मरक का द्वार ही बंद हो जायगा ।

(४०)

जैसे तुम मरना नही चाहते, जिंदा रहना चाहते हो, उसी प्रकार सभी प्राणी जीवित रहना पसन्द करते हैं। किसी का भी मरना पसन्द नहीं है, अगर तुम्हें पकड़ कर कोई पुजारी किसी दब के आगे बलि पढ़ाना चाह तो तुम उस पुजारी का क्या कहोगे ? उस देवो के विषय में भी क्या साचोगे ? वस, यही बात उन पशुओं के विषय में भी सोचा। फल है ता दतना ही कि तुम मरना चाहती में बोल सकते हो और पशु नहीं बोल सकते।

(४१)

माइया ! हिंसा के फल अत्यधिक बुरा है। वस्तुमान में भी और भविष्य में भी हिंसा दुःख सताप और मरणाति उत्पन्न करती है। ऐसा समझ कर हिंसा से बचा और जीवों को दया करा। व्यक्ति, समाज और देश अहिंसा से ही शान्ति और सुख का अनुभव कर सकता है। इसलिए सुख चाहते हो तो कड़व काँचरे की बल मत बाओ। हिंसा जहरीली बल है। और उस बल में फल जहरीला ही लगत है।

(४२)

एक आर जब सभी दया का धर्म कहते हैं तो फिर यह बकरा ईद वहाँ से था गई ? और दशहरा के तथा नवरात्रि के अयसर पर बकरे और पाँच मारन का सिद्धान्त वहाँ से निकल पड़ा ? यह सब जिन्हें बारीक नज़रों से ईजाद है।

आपका इस चक्कर में नहीं पड़ना चाहिए । सबका निश्चय कर लेना चाहिए कि दया घम है तो हिंसा घम नहीं हो सकती । जो लोग घम के नाम पर हिंसा करते हैं और उस हिंसा को अहिंसा का जामा पहनाना चाहते हैं और लोगों का यही बात समझाना चाहते हैं वे स्वयं मसाले में डूबने और उनकी बात मानने वाले भा डूबने दया-माना हो उधा पार करने वाली है ।

(४२)

जो लोग मूर्ख का लो वज्र में दफनाते हैं और बरत का मार कर उदर में दफनाते हैं उनका जीवन कभी पवित्र नहीं बन सकता ।

(४३)

हाम ! मनुष्य जिस पेट को चार रोटियाँ से भर सकता है, उसी पेट के लिए पक्षेद्रव्य जीवों का घात करने में मकोच नहीं करता । वह मांस भक्षण करके जंगली जानवरों की काटि में चला जाता है । अपनी शक्ति तृप्ति के लिए दूसरे प्राणों के जीवन को लूट लेना क्रिन्ना नाम भयाचार है ।

(४४)

भगर किमा ने चारों वेद पढ़ लिए हैं विविध शास्त्रों का कण्ठस्थ कर लिया है और ऊँच दर्जे का विद्वत्ता प्राप्त कर ली है, भगर उम पाठ का आचरण में परिणत नहीं किया,

चमड़े के बिना तुम्हारा कौन गा काम अटकता है ? चमड़े का बग न रक्ता तो क्या तुम्हारा काम नहा चलेगा ? घड़ी का पट्टा किसी धातु का लगा लामे तो क्या तुम्हारी शान बिरबिरी हो जायगी अत्यन्त मुलायम जूता न पहनोगे तो क्या बिगड़ जायगा ? साब्रों आदमी इन वस्तुओं का उपयोग नहीं करते तो क्या उनका कोई काम अटक जाना है ? फिर तुम क्यों इस पार हिंसा के हिंसेदार बनते हो ।

जो ज्ञान प्राप्त करके भी जीव हिंसा का त्याग नहीं करते, उनका ज्ञान निरपक्व है, उसकी कोई सफलता नहीं है । कोई मनुष्य औषध का ज्ञाता है, मगर रोग हान पर औषध का सेवन नहीं करता तो उसका ज्ञान किस काम का ?

मनुष्य के लिये यह कितनी सज्जीत्यादय बात है ? समस्त जीव जाति में मनुष्य का विकासस्तर सबसे ऊँचा है और वह सर्वोत्कृष्ट प्राणी होने का दावा करता है । मगर उसने बिनास का क्या यही परिणाम होना चाहिए कि वह अपने ही सबनाश पर उतारू हो जाय ?

(५०)

जगत् में भाति भाति के जीव-जन्तु ह । उन सब में मनुष्य की बुद्धि अधिक विकसित है । उसे सबसे अधिक ममज्ञ-दार होना चाहिए । अन्य प्राणियों का रक्षक बनना चाहिए ऐसा करने में ही मनुष्य की बुद्धिमत्ता और विवेक की विशिष्टता है ।

(५१)

दूसरों का शान्ति में ही तुम्हारी शान्ति है । अगर तुम्हारे देशवासी तुम्हारे पडासी मुत्ती हागें तो तुम भी सुखी रह सकोगे । अगर तुम्हारे चारों ओर अशान्ति की ज्वालाएँ भभक रही होंगी तो तुम्हें भी शान्ति नसीब नहीं हो सकती । इस प्रकार अपनी निज की शान्ति के लिए भी दूसरों को शान्ति पहुँचाने की आवश्यकता है । इन बातों को कभी मत भूलना कि दूसरों का अशान्त रखकर कोई शान्ति नहीं पा सकता ।

(५४)

स्वाध में अध मत बना । गरीबों को अधिक गरीब बना कर अपनी जमीनी बढ़ाने के तरीक छोड़दो । मत समझो कि हमारा पेट भरा है ता दुनिया का पेट भरा है । उनकी असली स्थिति पर विचार करो । हृदय में दया की भावना रखवा । गरीबों की कुटिया में जाकर देखो, उन्हें छाती स लगाओ और उनके अभावों को दूर करो । ऐसा करने में गरीबों का ही नहीं तुम्हारा भी हित है ।

वर्षे लाग कहा करते हैं कि अगर हम माप, बिच्छू, शर बाघ आदि विषम और हिंसक जीवों का मार डालें तो क्या हज है ? वे दूसरे जीवों का मारते हैं अतएव उन्हें मार देने से हिंसा रक्त जायगी । परन्तु यह विचारधारा अत्यन्त भ्रमपूर्ण है और उन्नती है । हम योगी से पूछना चाहिए कि दूसरे प्राणियों को मार डालने के कारण अगर सिंह आदि मार डालने योग्य ह तो सिंह आदि का मार डालने के कारण मनुष्य भी मार डालने योग्य क्या नहीं साबित हो जायगा ? इस प्रश्न का ये क्या उत्तर आता ?

भाइयो ! इस तरह हिंसा पर उपाय हो जाय तो अनवस्था हो जायगी । चूहों का मार डालने के कारण बिल्ला मार डालने योग्य होगा बिल्ला का मारने के कारण कुत्ता मार डालने योग्य साबित होगा कुत्ता को मार डालने से भड़िया मार डालने योग्य सिद्ध होगी और भड़िया का भी मारने के कारण सिंह मार दन योग्य हो जायगा । सिंह को मार डालने की वजह से मनुष्य हिंसा का पात्र बन जायगा । अतएव यह है कि अगर आपने हिंसा का मोक्ष मानना शुरू कर दिया तो कहा ठहरने का ठिकाना ही नहीं रह जायगा ।

भाइयो ! जो किसी से उधार ले आया, उसे लेने के लिए भी वह आया । इसी प्रकार तुम किसी के प्राण लो

तो घट भी अचर मित्र पर तुम्हारे प्राण लगा । अगर तुम किसी के प्राण नहीं चांगता तुमकी कीर्ति उदर लन नहीं आएगा । किसी भी प्रकार का उदर न चुकाता वह एसी स्थिति प्राप्त हो जाता हो मान बढ़ता है । बदला दन और लन के लिए जे म मना पता है । माध म एमा बाद पगडा नहीं रहता । माध में पूरा निराकुलता है ।

(३८)

अज अगर बाद व्यक्ति बुरा है तो उसे मरने के लिए बुरा समय नही उचित नहीं है । पापा के पाप का भल घुणा की दृष्टि से देखा जाय, अगर पापा पर घुणा नहीं करना चाहिए । मान बढ़ सकता है कि ऊपर से पापी प्रतीत होने मान की अन्तरा मा मित्रनी ऊनी नीर सरस है । प्रभव चोर इसका उदाहरण है ।

(४१)

मनोरंजक भाग्यभाग्य का त्याग न कर सका तो उनमें एकान्तलिन भी मत रनो । दना के मय पर चलो । दया की ही अपन प्रत्येक काय की कसाटी बना कर व्यवहार करो । तुम्हारे जिस कार्य से म्या का विराध होता हो, उस घम मत ममनी । भगवती म्या के चरणों में अपना मरग्व बलिदान करो । यह पावन बलिदान आपके सौभाग्य के अगव भंडार का मगलमय द्वार खोल देगा । तब आपको मानूम हा जायगा कि यह सीधा घाट का मोटा नहीं है ।

भाइयो ! जा जमा करेगा वमा ही पायगा । जम घोड़
 घोयगा, वम फल चखने को मिलेगा । दया किय बिना कुछ भी
 मिसने को नहीं है । अतएव प्राणिया पर दया करना अपने पर
 दया करना है । अनएव अपनी भलाई के लिए, अपने बन्ध्याण
 के लिए प्राणिया पर दया करा ।

भाइयो ! किसी की रोजी पर तात मारना अच्छा
 नहीं ह । यह बड़ा घोर और भयम कृत्य ह । आजीविक
 म्यारहवाँ प्राण मिला जाता है, क्याकि आजीविका के अभाव
 में वसा प्राण खतरे में पड़ जात ह ।

काइ आदमी रंग-रूप में सुन्दर हो-छल छबील
 हो, पढ़ा लिखा हो बलना पुर्जा हो अगर उसके दिल में दय
 नहीं है तो जानवर का और उसका ज म बराबर हो है ।

जो शराबी का शराब पीने से रोक रहा है वह शराब
 का भला चाहता ह । ऐसी स्थिति में वह हिंसा के पाप का
 भागी नहीं हो सकता । कोई अनान बालक जहर की शीशी
 उठा कर पीने को उद्यत हुआ ह और एक समझदार आदमी
 उसे पीने से रोक देता ह तो वह पाप नहीं कर रहा ह । इसी

प्रकार साधु गण शठ वोरन वाले, चारी करने बात जीर व्यभिचार करन धान को उपदेश दकर राखते ह, तो इसमें हिंसा मानना उचित नहीं है ।

(६४)

दया-माना ही वास्तव में ससार के समस्त प्राणियों की माता है क्योंकि ज्या के प्रताप से ही उनकी रक्षा हो रही है उनका जीवन सुरक्षित बना हुआ है । जन्म देने वाली माता के हृदय में भी दया होने के कारण वह अपनी सन्तान का पालन पोषण करती है । अगर मानुषी माता में से दया निकल जाय तो मानव-सिंघु की क्या हालत हो जाय ? इस बात पर गहरा विचार करने से दया-माता की महिमा जल्दी समय में आ जायगी और यह भी समझ में आ जायगा कि वास्तव में दया ही प्राणी मात्र की असली माता है ।

(६५)

दया माता का स्मरण करने से सभी कष्टों का निवारण हो जाता ॥ । हमारे जीवा को सुख पहुँचाओगे तो स्वयं सुख पाओगे और यदि दूसरा को पीडा दोगे तो स्वयं पीडा के पात्र बनोगे । यह दया-माता का नियम है और तीन काल तथा तीन लोक में, कभी कही बदल नहीं सकता ।

(६६)

दया धर्म ही सच्चा धर्म है और दया बिना कोई भी धर्म, धर्म नहीं कहला सकता ।

-: सत्य :-

(१)

संसार य जो सत्य है, वही आत्मा है । सत्य और आत्मा एक ही है । सत उसे कहते हैं जिसका कभी नाश नहीं होता । अतएव आत्मा सत्य है और सत्य आत्मा है ।

(२)

सत्य के बीज से, अस्त-वर्ण के प्रदेश में एक ऐसी प्रचण्ड शक्ति का उदय होता है जिसे पाकर मनुष्य अज्ञान और अप्रतिहत हो जाता है । सत्य के प्रबल प्रताप से हमें लोभ में परम मगल का प्राप्ति होती है ।

(३)

संसार के सभी धर्म शास्त्रों में सत्य का ऊँचा स्थान दिया गया है । भिन्न-भिन्न धर्म और-और बातों में भले मतभेद रखते हैं, किंतु सत्य व विषय में किसी का मनभेद नहीं है । यह सत्य ही सब से बड़ी महत्ता और विजय है ।

(४)

सत्य व अभाव में कोई भी धर्म नहीं टिक सकता । अनाथ धर्म अगर बल टाँकी टहनियों और पत्ता है तो सत्य

का उा मय का मूर मानता हुआ । जम मूर के उत्पद् जान पर वक्ष धरागाया ह् जाता है उमी प्रवार मय व अमाव र्म यभी धर्मों का बधाव ह् जाता है ।

(१)

शूठ बोलने वाला एव बार शूठ बोल कर अपना काम बनाने का प्रयत्न ता अवश्य करता है परन्तु उसका हृदय में साटका बना रहता है । यह अपन अमत्य को छिपाने के लिए जात रहता है और डरता रहता है कि कही मेरा योग न गुत जाय ? उमे एव शूठ का छिपाने व लिए अनेक शूठ गढ़ने पड़ते हैं । उसकी धाम्मा गिरती है । यह मदक बचन रहता है, सशक रहता है और भाग म्मा धाना नकन म गिरा रहता है ।

(६)

असत्य अविश्वास का मूल कारण है । जिते जाग अमत्य बादी समस्त लन उगहा विश्वास नहीं करते । उसकी सच्ची बात भी झूठी समझी जाता है । असत्य छाटी गान्गी धामनाओं का घर है और समष्टि में रवाकट डालने वाला है ।

(७)

भाइया ! समन योगारोपण करना बडा ही भयानक पाप है । जिसको झूठा बनव रगाया जाता है, विचार करो कि उम कितनी मानसिक व्यथा होती होगी ? प्राण ली वाला समु एन्म प्राण से लेता है परन्तु कम्बक लगाने वाला, जिते

बलक लगाता है उस आजीवन पीड़ा पहुँचाता है । यह कोई साधारण पाप नहीं है ।

(८)

नाम रखने का उद्देश्य किसी के गुणों को प्रकट करना नहीं है, बरन् व्यवहार में, पहचान में सुविधा पदा करना है । अतएव दुबले पतले मधमर आदमी के लिए नाट्टरसिंह शब्द नाम के अनुसार शब्द प्रयोग करने से असत्य का दोष नहीं लगता है क्योंकि यह कथन नाम सत्य है ।

(९)

सत्तरज के मोहुरा में राजा, वजीर, हाथी, ऊट, घोडा और प्यादो की स्थापना कर ली जाती है । उन मोहुरो को राजा, वजीर आदि शब्दों से कहते हैं । ऐसा कहना झूठित नहीं है, क्योंकि यह स्थापना सत्य है ।

(१०)

किसी ने प्रश्न किया—समुद्र कैसा है ? उत्तर दिया गया—पानी से भरे हुए बटोरा जैसा । यह कथन उपमासत्य है ।

(११)

जैसे दो और दो चार होते हैं वह ध्रुव सत्य था, है और रहेगा, उसी प्रकार तीर्थंकरों ने जो मार्ग बतलाया है वह भी ध्रुव सत्य है ।

(१२)

योगी का यह धर्म मात्र है कि असत्य का सवन करने से किसी प्रकार का लाभ हास्यता है। युधिष्ठिर अपने सत्य पर आसक्त रहता था महाभारत में उसे विजय प्राप्त नहीं हुई ? अवश्य हुई।

(१३)

सत्य सदा दया नहीं करता। वह एक न एक दिन अवश्य उभरता है। कोई भी मेष सदा के लिए सूय को नहीं छिपा सकता। घना मेघ घना कोहरा भी आखिर पड़ता है और सूय अपने असली रूप में चमकन लगता है, सत्य भी ऐसा ही है। वह कभी न कभी प्रकाश में आये बिना नहीं रहता।

(१४)

हिंसाकारी वचन सत्य की कोटि में नहीं है।

(१५)

छोट समय के लिए भी जिसने असत्य या अग्रहाचय का सेवन किया, उसने अपना जीवन मिट्टी में मिला लिया। क्या एक धार जहर खाने वाला मरता नहीं है ? अवश्य मरता है। इसी प्रकार एक बार सत्य का परित्याग करने वाला भी अपना धर्म गँवा देता है।

स नहीं होता है । कई लोग ऊँची जाति में उत्पन्न होकर भा-
चार और बदमाश हो सकते हैं और कई नीची समर्थे जान-
वाली कौम में जन्म लेकर भी प्रामाणिकता और नति के साथ
अपना निवाह करते हैं ।

(३)

‘मायाघोष का क्तव्य है कि वह छान छान करके
सच्चा ‘माय दे-दूध का दूध पानी का पानी कर दे । इसके
विपरीत अगर वह किसी के लिहाज में आकर किसी के दबाव
में पड़कर साम लालच में फसकर या रिश्तेत लेकर धपात्र
करता है, सच्चे का झूठा और झूठ का सच्चा ठहराता है तो
यह चोर है वह अपने क्तव्य का चोर है, धर्म का चोर है,
सरकार का चोर है और प्रजा का चोर है । इसी प्रकार कोई
दूसरा कमचारी भी अगर अपने वास्तविक क्तव्य से गिरता
है तो वह चारी के अर्धे कुण में गिरता है ।

(४)

चारी करक कमाया हुआ पसा मोरी में ही जाने
पाता है । उससे आत्मा का भी हनन होता है । चारी करने
पाता व्यापार अन्त तक अपनी माय काममें नहीं रख सकता ।
एक न एक दिन उसकी साख खत्म हो जाता है और व्यापारी
की साख उठ जाना एक प्रकार में व्यापार उठ जाना है ।



(५)

कामभाग विषय में अधिक विषय है । विषय की बात की जाय विषय का हाथ में लिया जाय आखिरी से देखा जाय या विषय सबधी जान कानों में सुनी जाय तो विषय हानि नहीं पहुँचाता, उनमें कामभोगों का विषय इतना तीव्र होता है कि उनकी बात कहने मुनन से, स्मरण करने और देखने से भी अपना प्रभाव डाले बिना नहीं रहता । फिर और-और विषयों का प्रभाव तो अधिक से अधिक वर्तमान ज्ञान का ही प्रभावित करता है मगर भागों का विषय जन्म जन्मान्तर तक आत्मा को प्रभावित करता है ।

(५)

जब दिव्य कामभाग भी इच्छा की पूर्ति नहीं कर सकत तो फिर साधारण मानुषिक कामभाग क्या सृष्टि कर सकेंगे ? भागों का अभिलाषा भाग भागने से उसी प्रकार बढ़ती जाती है जिस प्रकार ईष्यन झींकने से भाग बढ़ती ही जाती जाती है । इन भागों के अन्त में दुःख के सिवाय और क्या पले पड़ता है ? तो क्या रक्खा है इन भोगों में ! ससार के सभी मौद्गलिक पदार्थ आत्मा के लिए हिनकारी नहीं हैं । थोड़ा दिनों रह कर वे आत्मा को झूठ बता कर दूर हो जाते हैं ।

(६)

ब्रह्मचर्य का अभाव में मूल भूत प्राण शक्ति का ह्रास हो जाता है । तो बाहरी उपचार क्या काम आएंगे ? दीपक में

तल हा नहीं होगा ता सास प्रयत्न करा, वह प्रदोष नहीं होगा । इसी प्रकार शरीर में बीयागनि नहीं ह ता कोई भी औषध रसायन, नम्र घ्राणि काम नहीं आ सकती इसके विपरीत यदि आपन अपने बीय का रक्षा की है ता धारका स्वतः मीरागता प्राप्त होगी आपका जीवन आनन्द लयक होगा ।

(७)

कामवासना घाय है । इस आग की विवेचना यह है कि इसमें जल कर भा लोच जलन का अनुभव नहीं करने, बल्कि गति शमयत है । यह आग सबन वस्तुओं के विवेक का हा नष्ट करता है । और जब उमका विवेक नष्ट हो जाता है तो फिर उस हिन प्रहित का भान ही नष्ट होता है ।

(८)

जिसके हृदय में काम-वासना उत्पन्न होती है वह पुरुष प्राण रहत भी अन्ध और बान हात्र रूप में बदलता जाता है । उस हिताहित का भान नहीं रहता ।

(९)

मनुष्य के मन में जब दुर्वासना उत्पन्न होती है तो विगडन जरा भी देरी नहीं लगती । चित्त अविज्ञान मनुष्य का अधा कर देता है । उचित-अनुचित क्या है, उचित-अनुचित क्या है इत्यादि विचार ऐसे मनुष्य से दूर हो जाते हैं । यदि राजा दासियों के भी दास बन जाते हैं तो वह भी दास बन जाते हैं ।

दासों की दासियाँ बन जाती हैं। वास्तव में यह काम विकार बड़ा ही अनर्थकारी है।

(६ ब)

उल्लू दिन में नहीं देखता और कौवा रात्रि में नहीं देख सकता, किंतु कामाध पुरुष उल्लू और कौवा से भी गया बीता होता है। उसे न रात का दिखाई देता है न दिन को दिखाई देता है। वह रात-दिन जघा ही बना रहता है।

(१०)

कामवामना के कारण जिसका विवेक निलुप्त हो जाता है, वह विनय शील, सत्तोप, भद्रता, सज्जाशीलता, कुलीनता आदि सभी को त्याग कर निलज्जता उद्दण्डना आदि बुराईया का शिकार हो जाता है। अपने पुरुषार्थों की कीर्ति का बलिदान करने में समर्थ नहीं करता।

(११)

जिसने ब्रह्मचर्य की महिमा नहीं समझी और इस कारण अपने वीर्य का दुरुपयोग किया, समझ सके उसने अपने हाथों से अपने सिर पर कुल्हाड़ा चला लिया। उसने अपने जीवन की छान्द और नष्ट कर डाला। वह अपनी आत्मा का भयानक शत्रु है। अपने देश और समाज को भी वह हानि पहुँचा रहा है। वह निर्बीर्य पुरुष निकम्मा है। वह जीता है तो भी मृतक के ही समान है।

(१२)

क्या आप उस मूख मनुष्य का विवेकवान् समझे जो बहुमूल्य इत्र को गटरो में डाल देना चाहता है ? मनुष्य जन्म और ब्रह्मचर्य अनमोल रत्न है । उन्हें थोड़ा दना भूखता की पराकाष्ठा है ।

(१३)

वीर्य का नाश करना जीवन का नाश करना है । और वीर्य की रक्षा करना जीवन की रक्षा करना है ।

(१४)

काम-वामना समस्त दुर्गुणों का प्रतीक है और काम को जीत लेना समस्त विकारों को जीत लेने का चिह्न है । जिसने काम को जीत लिया, उसने सभी दोषों को जीत लिया समझिए । वास्तव में काम को जीतना बड़ा ही कठिन कार्य है ।

(१५)

धर्म की आराधना की पहली शक्ति विषय-वासना को जीतना है और विषय वासना में काम वासना सबसे जबरदस्त है । इसे जीते बिना धर्म में निराकुशता नहीं उत्पन्न हो सकती । अतएव जिसे अपना जीवन सफल बनाना है, अपने भविष्य कल्याण-पूर्ण बनाना है, जिसे शान्ति की कामना है और जो अमीम सुख का अभिलाषी है, उसे कामवासना पर विजय प्राप्त करनी ही चाहिए ।

दासों को दासिया बन जाती ह । वास्तव में यह काम विकार
बन ही अनथवारी ह ।

(१८)

उन्नु दिन में नही देखता और बीबा रात्रि में नही
देख सक्ता किंतु कामांछ पुष्प उल्लू जोर बीबा से भी
गया बीता हाता ह । उम न रात का दिवाई दता ह न दिन
का दिवाई दता ह । यह रात-दिन अछा ही बना रहता ह ।

(१९)

कामवासना के कारण जिसका विवेक विलुप्त हो
जाता ह, वह किंमय, शील, सतोष भद्रता, सज्जाशीलता,
कुसीनता आदि सभी को त्याग कर नितज्जना, उदण्डता आदि
बुराईयो का शिकार हो जाता ह । अपने पुश्ताओ की कीर्ति
को बलवित्त करने में संकोच नही करता ।

(२०)

जिसने ग्राह्य की महिमा नही समझी और इस
कारण अपने धीव का दुष्प्रयोग किया, समझ ला उसने अपने
हाथो से अपने तिर पर कुल्हाड़ा चला लिया । उसने अपने
जीवन का अष्ट और नष्ट कर हाता । वह अपनी आत्मा का
मयानक गन्तु है । अपने देग और समाज को भी वह हानि
पहुंचा रहा है । वह निर्दोष पुरुष निकम्मा ह । वह जीता ह
ता भी मत्त के ही समान है ।

(२०)

कौई कह सकता है कि स्त्रियों के विषय में बातचीत करने में क्या रक्सा है ? जहाँ करना से कम ब्रह्मचर्य बिगड़ जायगा ? परन्तु ऐसा बात नहीं है । इमली या मीठू का नाम तब ही मुँह में पाना भर आता है । इसी प्रकार स्त्रियों सम्बन्धी बातचीत करने से मन ठिकान नहीं रहता है ।

(२१)

ब्रह्मचारी पुण्य स्त्री के अगोपागों का अवलोकन न करे । कौई कह सकता है कि विचार तो पित्त में होता है, आँखों में नहीं । फिर स्त्री के अगोपागों को घयर देख भी लिया जाय तो क्या हानि है ? इस सवाल का समाधान यह है कि जम गूँव की तरफ बार-बार देखने से आँखों की शक्ति का नाश होता है, उसी प्रकार स्त्रियों के अगोपागों को देखने से ब्रह्मचारी पुण्य के ब्रह्मचर्य का विनाश होता है ।

(२२)

उत्तरे भाग के स्थान से पाँच हजार का सात लाख हो गया सात सत्तर हो गया—उमकी कौई कीमत नहीं रही, इसी प्रकार स्त्री के स्थान से सयमी भी सत्तर हो आएँगे । आपके ब्रह्मचर्य का क्या मूल्य रह जायगा ?

(१६)

नारी धी के घट के समान है और पुरुष तप अगर व
समान है । अतएव ब्रद्धिमान् पुरुष का चाहिये कि वह धी
और आग का एक जगह न रक्य ।

(१७)

जैसे गेहूँ के आटे में धूरा बोला रखने में उमका बर्ण
नहीं होता अथवा चावल के पास कच्चा मारियल न्य देन में
उसमें कीड़ पड़ जाते हैं, उसी प्रकार स्त्री और पुरुष अगर
एक भासन पर बैठे तो उनका ब्रह्मचर्य नष्ट हो जाता है ।

(१८)

पति-पत्नी के शब्द या हसी-मजाक का बात मुनन में
मन में विचार उत्पन्न होने की पूरी संभावना रहती है । ज
शेष की गजना सुनने में मार बालने लगता है, उसी प्रकार
काम-विकार समझी जाने मुनन में विचार जागृत होता है ।

(१९)

जो स्त्री आदि के साथ एक मकान में रहता है अथवा
स्त्रियों की चर्चा बार्ता करता है, उसका ब्रह्मचर्य बिगड़ जा
की पद पद पर सम्भावना बनी रहती है । जहाँ ऐसी बात हो
समझना चाहिये कि वहाँ खासी म्यान है, तलवार नहीं है ।
पुरुष के लिए स्त्री का सतग और स्त्री के लिए पुरुष का
सामीप्य सिवाय हानि के और कुछ उत्पन्न नहीं कर सकता ।

(२६ व)

ब्रह्मचर्य की साधना का मबध अम आस थीर का के गाय ह उमी प्रकार जीन के साथ भी ह । आखा और शानो पर कितना ही नियन्त्रण क्या न रक्खा जाय, अगर जोभ पर नियन्त्रण न किया ता साधना हिमो भा समय मिट्टी म मिल सकती ह । पीप्टिक मादक आर उत्तजक भाजन करने वाला ब्रह्मचर्य का आराधना नहीं कर सक्ता ।

(७)

ब्रह्मचारा का सदा-मूखा भोजन भा परिमाण से अजिव नहीं माना चाहिए । मेर का हंडिया म सबा सेर भर दिया जाय ता फूट बिना नहीं रहेगी ।

(०८)

यदि किसी का मन सबल नहीं है ता वह वय म एक दिन छाड कर ब्रह्मचर्य पाले । यह भी नहीं बनता ता महीने म एक दिन अपवाद रख कर ब्रह्मचर्य का पालन करा । अगर इतना भी न हा सब तो कपन सिरहान रख कर सोओ । शरीर का राजा बीय ह । अगर राजा बिगड गया या मट्ट हो गया तो प्रजा का पता लगाना ही बछिन है । शरीर का राजा बिगड जाता है ता फिर जदी हो सबकुड इकट्ठे करने पडत ह ।

(२३)

जस व्यापारी जहाज पर सवार होकर व्यापार के निमित्त समुद्र के परत पर जाना है उसी प्रकार जो ब्रह्मचर्य स्त्री जहाज में बैठता वह समार स्त्री समुद्र के परत पर जायगी ।

(२४)

कामभोग तब के समान है । जैसे शरीर के भाग पर घुमा हुआ बूल मासिक वेदना पहुँचाता है, उसी प्रकार यह कामभोग भी आत्मा को गहरी वेदना पहुँचाने वाले है ।

(२५)

मगर माना पिता ब्रह्मचर्य का ध्यान रखता बनपन में बालकों का प्रायः सेवा की आवश्यकता है । न रह । उनको भी जल्दी सुझाया नहीं आये । क्योंकि प्रायः शरीर का राजा है । जिसका राजा है बिगड़ जाय, उसकी प्रजा क्या ठीक रहे सकती है । इसी प्रकार ब्रह्मचर्य के बिगड़ जाने पर शरीर भी बिगड़ जाता है । आज ब्रह्मचर्य को और पर्याप्त ध्यान नहीं दिया जाता, इसी कारण अस्ति, निस्तेज, अग्नि और अन्धामुल्य होती है ।

(२६ अ)

जो लोग बलवधक और उमादकार भाजन करते हैं और कभी तपस्या नहीं करते, वे अपने ब्रह्मचर्य का रक्षा नहीं कर सकते ।

हैं। हम घूम रनों नहीं है, पसे मन गही है कि किसी की सुशामद रखे त्यागान दे।

(२२)

जो मनुष्य ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहता है उस अपने रहन-सहन और खान पान के प्रति विशेष सावधान रहना चाहिये। जीवन में उसे सादगी धारण करना चाहिए। बाल जमाना, सुगन्धित मायून वगाना, इत्र वगाना, मुन्तर वस्त्र भक्षण धारण वस्त्रा और भाति भाति का गृहार करना यह सब कामान का निमग्नण दन की ही तयारा करना है। अत एव भजन मन का जातन का प्रयत्न करना चाहिए। मन को जीत बिना विषय विचार को जेतना रठिन ही गही अत्यय भा है।

(३३)

काम रूप विहार स्वाभाविक नहीं है। यह तत्मा का सहज गुण नहीं है। पर पदार्थों के सदाग में ही इस विहार का उत्पत्ति होता है। जो विचार जा मा का अपनी निबलता और भूत में उत्पन्न तथा है उस आत्मा विनष्ट भा कर मानो है।

(३४)

जो मनुष्य शान्ति का इच्छक है, वांतिमान यत्ना चाहता है स्मरण लकिन वद्वान की अभिलाषा रखता है बुद्धि को वद्धि चाहता है, गरीर का गथा में वचाना चाहता है और

(६)

जो गृहस्थ स्वयं-सूखा भाजन करते हैं उनका भा-
चित्त छिन्नाने नहीं रहना, ऐसी स्थिति में घर में सधु प्रतिदिन
परिष्कृत माल-ममालें लाएगा तो उसका माधुता छिन्नाने समय
में क्या कमर रह जाएगा ? किसी आत्मी को विदाय का
बीमारी हुआ जाय और फिर उस मिश्री तथा दूध पिला दिया
जाय तो वह नालाम ही बोल जायगा-मर जायगा, इसी
प्रकार जो रोज माल लायगा, वह ब्रह्मचर्य में व्युत्त हुआ जायगा ।

(७)

जैसे पवन का समुद्र में निरना सम्भव नहीं, उसी प्रकार
पाण्डित्य भाजन करने वाला क लिए ईद्रियों का निग्रह करना
सम्भव नहीं । ईद्रिया को प्रबल बनाने वाला, उन्माद उत्पन्न
करने वाला, उत्तेजक भाजन विषय वासना की जार प्रसार
करता है । ऐसा भाजन करके काम विजय करना सम्भव नहीं है ।

(८)

स्त्री घर में ब्रह्मचारी पुरुष के लिए विषय व समान है
तो ब्रह्मचारिणा स्त्री व लिये पुरुष भी विषय व हा समान है ।
स्त्रिया का पुरुषा व सार्वत्रिध्य-समय में बचना चाहिए और
ब्रह्मचर्य पालन के लिये पुरुषा का जो नियम बनलाय गय है
वे स्त्रिया के लिए भी समझना चाहिए । आशय यह है कि पुरुष
भी कम माया नहीं है । हम तो गेना के सारे सारे गीत गाते

(२)

भाइयाँ ! जम रहानय सब व्रता में उतम है उमा प्रवार व्यभिचार सब पापा में बड़ा है । हमके कई बाग्य हैं । उनमें ॥ एक बाग्य यह भा है कि और और पापों को नरह यह पाप सम्पत्ति ममाप्न नहीं हो जाता हिन्दु दुनकी परम्परा उम्मी बना जानी है ।

— परस्त्री गमन —

(१)

परायी स्त्री को भा जूठन की उपमा ॥ गई है । अतएव उम पर सनधाने वाला कुत्रान जन नहीं हो सकत । और कुत्रा के समान नीच जन ही उमकी आबिछाया करत हैं । परस्त्री गमन भयानक अपराध और घोर पाप है । घनर दुनो का कारण है ।

(२)

यहो वहाँ बगर और वहाँ बिठा ! अगर मारपी पा एसा स्वभाव है कि वह बसर क पास नहा जाता । उमे बिष्टा ही प्यारी लगती है । इसी प्रकार जो स्त्री, अपने विवाहित पति का छाड़ कर परपुरुष के पास जाती है, वह मानो बसर को छोड़कर बिष्टा पर जाने वाली, गन्दगी को पसन्द करने वाली मनस्वी क समान है । यह बात पुरुष के लिए भी है । परस्त्री का सेवन करने वाला पुरुष जठन घाटने वाले कुने के समान गहित है ।

उत्तम मानान चाहता ह उन ग्रहचय म्म महान् धर्म वा
शाचरण करना चाहिये ।

(३१)

ग्रहचय मे तन जीर मन बचवान बाग है । ग्रहचय
से आत्मा निमल होती है । ग्रहचय के प्रमाण म गय प्रकार
की सिद्धियाँ प्राप्त हाती हैं । ग्रहचय उन विद्या युद्धि प्रतिभा,
तेजस्विता स्वम्पता, दोर्घायु और मुन्य प्रगत करग बाग है ।

(३२)

ग्रहचय का पालन करने से अनेक भयकर बीमारिया
जसे क्षय, तपेदिक आदि भी दूर हा जाती हैं और वामासक्ति
की अधिकता से अनेक प्राणहारा रोगो वा उदभय हाता है ।
सुजाफ, गर्मी और प्रमह आनि गदी लग्ना जनर, जान लेने
वाली और जिन्दगी को भार भूत एव दुःखमय बनाने वाली
बीमारियाँ बीय व अनुचित विनाश से उत्पन्न हाती है ।

(३३)

स्त्री या पुरुष, जो व्यक्तिचारी हाता है प्राय क्षय जसे
भयकर राज-रोगो के निकार बनने हैं । राजयध्मा से बचने
वा सर्वोत्तम उपाय दारोर के राजा की बीय की-रना करना
ही है । यदि राजा नहीं बचा तो वनात्रा प्रजा की क्या दुदशा
होगी ?

(६)

जा परम्परी चम्पट हैं आर उदयागामा हैं य भी रावण का पत्थर मारन लोडते हैं मगर यह नहीं साबत कि जिस दोष व कारण रावण की यह ग्ना हुई वही दोष मुझ म जीर भी उपाता है ना मरो क्या दशा हागा ।

(७)

रावण का पुनसा जलाने वाला । तू जरा अपनी तरफ ता दख । तू स्वयं रावण का बाप बना पठा है और रावण को जलाने चला है । अर पहले तू अपनी दुर्बामनाआ रो जला जा तुझ रावण स भी गया—बाना बना रही ह, पतित कर रही ह और तब रावण क विषय म विचार करना ।

(८)

गचाई मूय क समान है जा मिथ्या क मथा म सत्ता व लिए छिपने को नहीं है । वह ता अन्तत प्रकट होने का ही है । सोता के सनो व पर कलक लगाया गया था किन्तु क्या यह कलक अत तक स्थिर रह सका ? नहीं । वह आग का पानी बना कर प्रकट हा गया और उस सता का कचक लगाने वाला ही कलनिन हुए ।

(९)

उदचलन औरत का राक्षसी को उपा दी गई है । उसक दाना स्तन दा फाडे हैं । जा ऐसी मिथ्या क पन् म फँस

(३)

रावण क्या टोम रखा कर सीता को ले गया था ?
 नहीं वह भी दिया घर श्वेत मे ही ले गया था । फिर भी
 जान दियो नही रंगी । इसी प्रकार साथ प्रयत्न करने पर
 भी तुम्हारा पाप लिया नहीं करता । वह एक दिन अचानक
 प्रकट होगा और तुम्हें निम्न अवस्था का पात्र बना देगा ।

(४)

रावण विनया गविशाली और मास्की कीर पुण्य
 था । परस्त्री की स्वाकृति ने बिना उम्मा मरन न करने को
 उसकी प्रतिभा थी । फिर भी परस्त्री का अपहरण करने मात्र
 ने उस कितनी हानि उठानी पड़ी ? उसे राज्य में साथ देने
 पड़ प्राणों का परित्याग करना पड़ा कुत्र का साथ हा गया ।
 जब रावण जमे गविशाली पुण्य का भी यह दुग्गा हो सकती
 है तो साधारण मनुष्य का तो कहना ही क्या है ?

(५)

क्या रावण का विनाश क्या हुआ ? उसने परस्त्री
 गमन नहीं किया सिर्फ परस्त्रीगमन करना चाहा था । यह
 साथ विचार करो कि जिस पाप का भयन करने की इच्छा
 मात्र में रावण उस महान् समाद को अपने राज्य से ही नहा
 अपने प्राणों से भी हाथ धोना पड़ा, उस पाप का भयन से
 साधारण मनुष्य को क्या हालत न होगी ?

घार पानवी है । वह अपनी ही प्रणिष्ठा का वन्दन नहीं करता, धरन् धन कृत और परिवार का भी कलक लगाता है । वह अपने गुरुत्वाग्रों व निमल यश का श्री कलकित करता है । वह दग्गो का बाढा भव की नजरा भ गिर जाता है । सभी उसमें घणा करत ॥ । उनके परिवार के लोग भी उसका मुल दखना पसद नहीं करते । वह जहाँ वही जाता है, अप धाम और तिरस्कार का पात्र बनना है ।



जाता है, उसको बड़ी दुःशा हा जाती है । आरम्भ में वह अपना मोहक चेष्टाओं द्वारा पुरुष को अपनी आर आकृष्ट करता है और जब पुरुष उनके चमूले में फँस जाता है तो फिर उसने गुलाम जसा व्यवहार करती है । ऐसे पुरुष के लिए जीवन भारभूत हो जाता है ।

(१०)

मश्या का घघर क्या है ? सुच्चा और गुच्छा में धूकने का ठीकरा है । जो अपना प्रतिष्ठा का समझता है वह भूल कर या इस गलत रास्ते पर नहीं जाता ।

(११)

जिन लोगो को वश्यामयन की गद्दी आसत हो जाते हैं, वे गर्मी, मुआक आदि भीषण व्याधियाँ के शिकार हो जाते हैं और गल गल करके मरते हैं । वे जीवन भर भयकर यान नाएँ भुगतते हैं और दूसरे लोग उनके प्रति सहानुभूति के दो गाने तक नहीं कहते । परलोक में जान पर लपी हुई ताम की पुतलियाँ से उन्हें आतिगन कराया जाता है ।

(१२)

परस्त्री की कामना करने वाला, परम्प्रा का आर विचार भरी दृष्टि से दमने वाला परस्त्री को हटाकर चुचष्टाएँ करने वाला और परस्त्री को झप्ट करने वाला पुरुष

हाता है, वह ससार मायर में डूब जाता है। अतएव जिसे डूबने की इच्छा न हो, उसे चाहिये कि वह परिग्रह का परित्याग करे।

(५)

निश्चित धन के लिए निःपरिग्रह बनना चाहिए।



- कथाय -

(१)

ईर्ष्या, द्वेष, लोभ आदि बुराईयों ने प्रेरित होकर कितनी ही त्रिया बुरी न की जाय, आत्मा का बलगाण नहीं हो सकता । कितना ही लम्बा तिसक लगावा और मुहपत्ती बाधा, किन्तु आखिर तो बुराईयों को जीतना ही काम आयेगा ।

(२)

तुम ईश्वर से मिलना चाहो और झूठ, बकट, लोभ लालच मोह ममता आदि को छोड़ना भा न चाहो, यह नहीं हो सकेगा । दो घोटो पर एक साथ मगारो नहीं हो सकती ।

(३)

जिसके अन्तःकरण में बुराईयों की अग्नि प्रज्वलित होती है, उसका विवेक दग्ध हो जाता है । वह बुराईयों वस्तु स्थिति का विचार नहीं कर सकता । वह अपने लोभ का न देखकर दूसरे के ही दोषों का विचार करता है ।

(४)

मांस का बाधक बुराईयों का ही है । दास का धोवन पीने वाला छठ गुणस्थान में और भूषी का धोवन पीने वाला

सानवें गुणस्थान में हो सो बात गही है । मले कपड़े पहनन मात्र से भी गुणस्थान नहीं चढ़ता । गुणस्थान चढ़ने के लिए कपाय को जीनने की आवश्यकता है । भुने घने या बार का आटा खाने वाला भी अगर लालपुता के साथ खाता है तो वह पाप का भागी होता है और यदि आलम का सीरा बिरबन भाव से खाता है तो वह पाप का भागी नहीं होता ।

(५)

कपायो की ज्या-ज्यो उपशान्ति हाती है, त्यो-त्यो गुणस्थान की उच्चता प्राप्त होती है । ससार भर के साहित्य का कठमथ कर लेने पर भी जिसने अपने कपाय का बिसकुल नहीं जोता वह एक भी गुणस्थान ऊँचा नहीं चढ़ सकता । इससे विपरीत अगर ज्ञान विशेष प्राप्त नहीं हुआ है फिर भी कपाय विजय का गुण प्राप्त हो गया है तो गुणस्थान अपनी ऊँची चढ़ जायगी ।

(६)

तत्त्वज्ञान के साथ कपाय का उपागम होने से ही श्रद्धा होता है । कोई घने उस पारणा करे परंतु कपाय का गिनन करे तो वह सच्चा तपस्वी नहीं कहला सकता । इस प्रकार तत्त्वज्ञान पा लेने पर भी अगर कोई कपायों को गिनना शुरू कर पाया है तो वह सच्चा तत्त्वज्ञानी नहीं है ।

इ ममत्त्वो ! जा काई भा निया करो, उसमे कपाय
 १। जितने का ध्येय प्रधान रूप से रक्खा । कपाय का न जीत
 सकोगे तो कितनी ही तपस्या करा कितनी ही भले कपडा से
 रहो, आत्मा को मुक्ति नहीं मिलेगी अनएव कपाय के कचरे
 को हटाओ ।

(८)

तपस्या आदि कोई भी ब्राह्म निया तभी साधक होती
 है जब यह कपाय विजय मे सहायक हो । अतएव जा कुछ भी
 करो उसमे कपाय विजय ही प्रधान होना चाहिए । तपस्या
 करा तो शरीर पर से ममता कम करो क लिए कमों की
 निजरा करत के लिए और अप्रमत्त अवस्था प्राप्त करने के लिए
 करा, लोक पूजा प्रतिष्ठा वश आदि के लिए मत करो ।
 ऐसा करोग तो कष्ट भी उठाओगे और आत्मिक प्रयाजन का
 भी पूरा नहीं कर पाओगे । बल्कि कपाय भाव में उलटी वृद्धि
 होगी । मांस और भी दूर चला जायगा ।

(९)

कपाय की उपजाति ही आत्मा के उत्थान का चिह्न
 है । तान उच्च श्रेणी का हो फिर भी अगर कपायो का उप
 नम न हुआ तो ज्ञान व्यर्थ है । आत्मा की पवित्रता का प्रधान
 माध्यम निष्कामवृत्ति ही है ।

(१०)

जम मदिरा का अमर हान पर प्राणी बर्मान हा जाता है उमा प्रकार कपाय का आवग हान पर मा प्राणा अपन आपका भूत जाना है । उसे धरता भग बुरा भी नहा भूतता जीर एस एम काम कर गुजरता है कि उस मन्व पडताना गडता है ।

(११)

बान्ध म मन्त्रि बा है जीर ऊपर स गट लगा है । उस सकर कोई हजार बार गगाजी म स्नान कराए क्या मदिरा पवित्र हो जाएगी ? क्या वह गगाजल म भूत मदिरा पय ॥ गह ? इसी प्रकार जिनका अंतरंग पाप और कपाय से भरा आ है वह ऊपर से बितना ही साफ—भुरा रह बगुल की तरह सन—मफ निसाई द, किन्तु वास्तव मे सा रहगा, अपावन ही ।

(१२)

ममज्ञदार आदमी विवरवान होना है ता मजे म घर अथवा दुकान जाता है किन्तु जा शराय पी सेता और नग में होना है, वह बीच म काटा म ही घडाम से गिर पडता है, इसी प्रकार कपाय और प्रमाद म पड कर जाव दुर्गति में जा पडता है, वस्तुतः कम से ही सुख—दुख की प्राप्ति होनी है । अतएव मनुष्य का प्रयम और प्रधान वस्तव्य एव उद्देश्य यही होना चादिए कि वह कर्मों का नष्ट करने का प्रयत्न करे ।

(१३)

जो जितना बपायो का त्याग करता है, वह उनना ही अधिक धर्मनिष्ठ है, फिर भल ही वह किसी वेष में क्या न रहा हो ।

(१४)

जिसने बपायो का मारा उसने जन्म मरण को मारा ।



- क्रोध :-

(१)

श्रीजी मनुष्य स्वयं जलता है और दूसरा का भी जलाना है। मय प्रथम स्वयं सन्नाप करता है जलन व कारण व्याकुल होता है फिर दूसरा को सन्नाप पहुँचाने का प्रयत्न करता है। अगले प्रयत्न से दूसरा भी दुःख हुआ या न हा, दूसरे का अहित हा भी सन्नाप है और कभी नहा भी होता, मगर काधी आप स्वयं अपना अहित अवश्य कर रहा है। अतएव भगवान का आदेश है कि अगर तुम सन्नाप न बनना चाहते हा, जलन तुम्हें प्रिय नहीं है क्षान्ति पसन्द है तो क्रोध का अपने राबू में रखो। क्षमा भावना का बढाओ।

()

क्रोध बहुत बुरा दुगुण है। यह बरता ही दुगुण समस्त सद्गुणा का नष्ट करने वाला है। यह नरक का द्वार है। जिमने इस दम्भाज में प्रवृत्ति किया, उसे नरक पहुँचते देर नहीं लगता।

(३)

श्रीजी का स्नान भूल जाता है। उसका शरीर गीला हो जाता है। काया स्वयं दुःखी होकर घर के सुख-लोगों को

दुखी बना देता है। उसका विवर नष्ट हो जाता है। वह चिडचिडा हो जाता है। वह कुछ खाता पीता है उसका रस क्रोध की आग में भस्म हो जाता है।

(४)

साइया ! राध का भाग वह भाग है जो पहले अपने आश्रय को ही जलाता है। जिस चित्त में राध का ज्वालाएँ दहकती हैं, वह चित्त ही पहले पहल जलता है। राध की ज्वालाएँ दूसरों को जलाए और बड़ाचिन न भी जलाए, पर अपने उत्पत्ति म्यान का तल जला कर राख कर ही डालती है।

(५)

भाग भी जलाती है, और राध भी जलाता है किन्तु दोनों से उत्पन्न होने वाली जलन में महान् अन्तर है। भाग उमर उमर से बमडा जादि को जलाती है मगर राध अन्तरंग का समाप्त करता और जलाता है। क्रोध की अग्नि बड़ा अवदन्त होता है।

(६)

क्रोध का बाण्डाल की उमा दा जाती है। वास्तव में बना जाय तो असली बाण्डाल क्रोध ही है। जिसके चित्त में क्रोध का वास है वह स्वयं बाण्डाल है।

(७)

क्रोधी मनुष्य जब क्रोध के आवेग में जाता है, तो उसमें एक प्रकार का पागलपन आ जाता है। पागल आत्मी जम अरन हित-अहित का विचार नहीं कर सकता उसी प्रकार क्रोधी भी। यही कारण है कि वह राज की धन के लक्ष्म में मुकाबल नहीं करता।

(८)

क्रोध से आ पागल हाता है वह मत्त मगन्तु का विचार करने में समर्थ हो जाता है। क्रोध का साथ में उसकी विचार शक्ति क्षय हो जाती है। वह न जानन योग्य भाषा बोलता है न करने योग्य काम करता है और न करने योग्य मरणा जाता है। वह क्रोध का साथ में स्वयं भी जाता है और दूसरों का भी करता है।

(९)

क्रोध में तपस्वी की तपस्या टूट भिन्न हो जाता है। जैसे हनुवे में कपूर की धूँती दे दी जाय वनावट में मलिनता डाल दिया जाय तो बनावट क्या वह माने योग्य गृहवा प्रचार तप और त्याग में यदि क्रोध का भेन हो जाय तपस्या स्थग हो जाती है।

नाथ मन्त्र धन्य का ही कारण होता है वह दंग में, जाति में, समाज में, परिवार में और मित्र मण्डली में अशांति पैदा कर देता है, फूट डाल देता है और अ-व्यवस्था उत्पन्न करके उसका विनाश कर डालता है। जनार्दन शास्त्री में यही उपदेश दिया गया है कि नाथ का त्याग न करना चाहिए। नाथ धर्म का धाम-कल्याण का विनाशक है, और अत्यन्त भयानक है।

मनुष्य जब नाथ में जाता है तो भद्र शक्ति का प्रयोग करना है और फिर उस उपाय के लिए सज्जित होना पड़ता है। यनिया मास नहीं खाता लेकिन क्रोध में आकर बालता है कि 'तुम बच्चा ही था जाऊँगा'। ऐसी भाषा राज्य और धार्मिक पुरुषों को कभी नहीं बालनी चाहिए। क्लेशित मन पर कायू न रहा है और आवश में एस शब्द निकल गये है। ता प्रायश्चित्त लेकर शुद्धि कर लेनी चाहिए और जिससे ऐसे शब्द नह हो उससे क्षमा माग लेनी है।

जसे पागल
रहता है और न
प्रकार बुद्ध मनुष्य
नाथ के कारण

है
है।
जाता

(१३)

जिस प्रकार पाना का सह भ जम हुआ काचड़ का हाव
 आनकर हिना लिया जाय ता निमल जल भा मला हा जाना
 ह इसा प्रकार श्री के कारण समचकार आदमी भा क्षण
 भर में मुख दल जाना ह ।

(१४)

क्रोध के आवन भ मनुष्य अघा हो जाता ह । वह
 पागलपन की स्थिति में पहुँच जाना ह । उसका मस्तिष्क
 शून्य हो जाना ह । एमे स्थिति में ही कोई-कोई आत्मघात
 तक कर लेता ह । अतएव क्रोध बड़ा हा भयकर शत्रु ह ।



~: मान :-

(१)

चिउंटो व जंगल पर आतं है ता लाग रहने है यह पर नही मरने का निशानी है, यमराज का नाटिम है । जंगल किमी आदमी मे घमण्ड का भाव अत्यधिक बढ गया हा और यह घमण्ड क कारण फूल रहा हो ता समझा कि इसकी मोन इसके मिर पर चक्कर बाट रहो है ।

(२)

अभिमान पाप का मूल है । अभिमान उत्पत्ति जीव प्रगति के पथ का एक अवदन्त राक्ष है । अभिमान मनुष्य का अघा बना दता है । जो अभिमान से अघा उन जाता है उस अपन अवगुण और दूसरे क सद्गुण नही स्मिदाई देते । अभिमानी मनुष्य उचित-अनुचित का भेद भूल जाता है । विनय को नष्ट करने वाला अभिमान ही है । अतएव अपना कल्माष चाहते हो तो अभिमान का त्याग करो का आदा करो ।

(३)

यह अहवार
मनुष्य को अपने १

बड़ा बुद्धि मितो कि अभिमान भा यिला । पाच आदमा
 पूछने लग कि घमण्ड कय गया । जरा मा गुन आना है ता
 दुर्गुण भी उनके साथ भगा आना है । किमी का भना आदमा
 समय कर मुखिया उनाया आर कहो काटन दौड पडा ।

(५)

गधडा चिल्लाना है-टा-म-टा-भू अथान जा ह मा
 में है । मगर कौन उने बहप्यन दता है ? इसा प्रकार जा
 मनुष्य अहकार म चर रहता है और अपने सामन किसी का
 कुछ गिनता ही नहीं है उस सम्यग्ग्राह की प्राप्ति हाना
 बटिन है ।

(५)

अभिमान पनन का जार ल जान वाला धार शत्रु है ।
 वह विनाश का सप्टा है । उसक जगुल स अपनी रक्षा करो
 अपन आनका बचाओ । निरहकार वसि अम्युदय की मीठी है ।
 ज्यो-ज्यो नम्रता धारण करागे, ऊँच उठाग । शास्त्रा का बयन
 है कि नम्रता धारण करने से उच्च मोक्ष का बध्र हाना है आर
 अहकार करने से नाच मोक्ष कम बघता है ।

(६)

अभिमानी पुरुष दूसरा के सद्गुणा का जो दुर्गुणों के
 रूप मे दखता है और अपन दुर्गुणों का भी दुर्गुण नम्रता है ।
 फल यह हाता है कि वह सद्गुणों म वचिनु रहता
 दुर्गुणों का अभाव उर भवता है ।

अभिमाना एक प्रकार की बीमारी है जो समस्त गुणों का वृत्त और दुबल बना देती है। अभिमानों के समस्त गुण, अवगुण बन जाते हैं। यह आदर का नहीं, घणा का पात्र बनता है। इसमें विरुद्ध विनीत पुण्य आदर-समान के योग्य समझा जाता है। अतएव अपने मन में भूतकर भी वे भी अभिमान मत आन दो।

(८)

भाइया ! अभिमान अनुपम का एक प्रबल शत्रु है। जो अभिमाना है वह स्वभावतः अपने राई जितने गुणों का पवत का बराबर और दूसरा का पवत का बराबर गुणों को राई का बराबर समझता है। उसके ऐसा समझने से दूसरा की कोई हानि नहीं होती, उसीकी हानि होती है क्योंकि उसके सद्गुणों का विकास नहीं हो सकता। वह न विद्या प्राप्त कर पाता है न विनय प्राप्त कर सकता है, और न दूसरे सद्गुण ही पाता है। अभिमानों का साग हिकारत की निगाह से देखते हैं। उन्नति में जितना बाधक अभिमान है उतना और कोई नहीं। अतएव अभिमान का त्याग देना ही धर्मस्वर है।

(९)

वास्तविक दृष्टि से देखायें तो आपका अवश्य ऐसा ज्ञान पड़गा कि अहंकार करने योग्य वस्तु ही आपके पास नहीं

है । तुमियाँ म एव न एव बड़कर मद्गुणा पढ है आमत है
चनवान है विद्यमान है क्या तुम समझा हो कि तुम्हारा स्थान
विश्व में अस्मिताय ह ? कदाचित् एमा ह ता भी अहकार व
लिंग वार्द्ध कारण नहीं है । क्याकि जिस चीज व लिए तुम
अहकार करत हो, बड़ म्वाया नहीं है और तुम्हारा नहीं है ।

(१०)

अहकार ममार—मागर म गान गितान वाला है ।
धरौर मुदर हमा गमा कुछ म्वादा म्बद्धा हो गया थी ए
या गम ए वी परीना उत्पीण कर मी, दुवान म मरा हान
लगा था अहकार अधिक आन मग प्रमीष्ट साह्य बन
गय बम अहकार भा जाता है । यह सब अहकार भाने व
कारण । मगर तत्वगाली मनुष्य यही है जा अहकार की
सामग्री विद्यमान हान पर भा-विद्या, म्पति, मर एव
मार्ति हान पर भा अहकार नहीं करना ।

(११)

म एव का या उल का अभिमान कह
जिक दृष्टि से दिया जाय तो म अम्पी हूँ । म्प
स्वभाव है आमा का स्वभाव ही नहीं है । म्प
ह और मरा कलक ह । मर म्पि जा कलक का
पर अभिमान बँने कक ? म - का गुण ह
अन त ह । उम
मुदा प्राण नहीं ह ।

कुछ और जाति का अभिमान करना गूथता है । अनानि काल से समाज में उभरने करने लग्न इस जाति में भी जातियां में और भी कुछों में अनंत अनंत बार जन्म धारण किया है । अनंत बार यह चाण्डाल कुछ में जन्म ले चुका है । फिर जाति और कुल का अभिमान किस लिए ? और दर-असल न तो कोई जाति ऊंचा होता है और न नीचा होता है । उच्चता और नीचता का आधार बनव्य है । उंचा कृत्य करने वाला ऊंचा और नाचा कृत्य करने वाला नाचा होता है ।

(१२)

तुम्हें ऐश्वर्य मिला है तो उसके अभिमान में ऐंठना ठीक नहीं है । कितना ऐश्वर्य है तुम्हारे पास ? चक्रवर्ती वासुदेव और बड़े २ सम्राटों के ऐश्वर्य के आगे तुम्हारे ऐश्वर्य की क्या गिनती ? क्या भा खानो हाथ बन गए तो तुम क्या लेकर जान वाले हो ?

(१४)

क्या तू जवाना का घमंड करता है ? जवानी का घमंड करने से पहले बूढ़ा से तो पूछ ले । वह भी एक दिन तेरे ही समान जवान था । पर आज उनकी क्या अवस्था है । तू समझता है कि वही बूढ़ा हुए है और तू सदा जवान बना ही रहेगा कभी बूढ़ा नहीं होगा जवानी तो समुद्र की हिलार है भाई और चली गई । उस पर इतराना क्या ?

(१५)

जब नर मन शरीर के भीतर है शरीर में शक्ति है । सारा मल निकल जाय ता हाथ पर भी नहीं हिल सकत और भा नहीं खुन सकती इस प्रकार जिसकी जिदगी मन पर निर्भर है उसे अभिमान करना क्या शाभा देता है ।

(१६)

जरा विचार पाजिए कि आपका वाम अभिमान क्या माग्य पया है ? आपका शरीर इतना अशुचि है कि सगार में डूगरा चाई वस्तु इतना अशुचि नहीं । जिसमें स निरन्तर अशुचि पग्य बहते रहते हैं जो क्षण भर में निर्जीव बन कर पार धनु बन लगता है और फिर जिस प्रिय स प्रिय स्वजन की शाघ्र स शाघ्र आग में भीव न्न का तयार हो जान है उस शरीर पर अभिमान ।

(१७)

भाइया ! पुण्य व याग में तुम्हें मुन्दर मन्त्र और स्वस्थ शरीर मिल गया है ता अभिमान मत बने । शरीर में अभिमान करने की बात है भा क्या ? अगर शरीर की प्रमलियत का विचार किया जाय ता यही ततीजा निकलता है कि वह अपवित्र है अपाका है कम से कम अभिमान करने माग्य ता नहा । दम्बो न क्या मल का पुनला है यह शरीर । नाक में से रट झरता है आँखों में स गाँट निकलता है मुँह में से वप तथा थूक निकलता है एक तरफ से मर्सी और एक

(२७)

नुम्हार सामन स दा राग्न गात है । उनम एउ गम्ना पतन का है और दूसरा उथान का । अगर उत्थान के मार्ग पर चढ़ाग ना सर्वोत्कृष्ट दव विमान-मवायभिद्ध म पहुँच जाआग जोर फिर एक नव करन मुक्ति प्राप्प कर लोग पवन न रास्ते पर चलने स नम्क और निगान म जाना पडता है । मैं कुछ नहीं हूँ, यह उत्थान का मार्ग है आर 'मैं ही सब कुछ हूँ जा हूँ मैं ही हूँ' यह पवन का मार्ग है ।

(२८)

जब तब आपका दित म दया है और दिमाग म गराबी का भाव ह, तभी तब ईश्वर आपका साथ ह । जिस क्षण आपका चित्त में भहकार का अकुर उभर हो जायगा और आप समझेगें कि जा कुछ हूँ म ही हूँ उभी क्षण ईश्वर आपका साथ छोड़ गया ।

(२९)

जो मनुष्य प्रतिष्ठा या पूजी बढ़न पर भा समभाव म रहता ह, वही उन्नति करता ह । जो अरास्ता उन्नत होन हा आममान में उछलन लग जाता ह उसकी उन्नति ता दब जाती ह । वह अवनति के गहरे गत्त में भी गिरे बिना नहीं रहता ।

(३०)

जहा मान है वही अपमान है । नात समाकर देनाय
ना पडा चरया कि जहा अभिमान है वहा इस्बर नहीं है ।

(३१)

अपन मुह अपनी प्रशमा करना एत प्रकार की मूर्खता
है । वह प्रशमा समतादाग व माभन अप्रशसा रूप हो जाता
है । अपन मुह मिया मिट्टू बाने बाजा घुषा का दृष्टि से देखा
जाना है ।

(३२)

जहाँ अभिमान है वहाँ विनय नहीं और जहाँ विनय
नहीं वहाँ विवेक नहीं बुद्धि नहीं, नम्रता नहीं, मृदुता नहीं,
गुण प्राप्ति नहीं । उस प्रकार विचार करने से विदित होगा
कि अभिमान प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से सब सद्गुणों को नष्ट
करने वाला है । वह धनक अनर्थों का मूल है ।



~: विनय :-

(१)

विनय अकाङ्क्ष मुक्तस्वल्प भुक्ति का प्रदाय करता है, विनय से सब प्रकार की श्री प्राप्त होती है विनय से प्रीति की उत्पत्ति होती है और विनय से मन्त्रि ज्ञान का लाभ होता है ।

(२)

भाइया, नम्रता बड़ी मानी बात है । नम्रता विनय है और विनय तपस्या है । तपस्या से कर्मा की निजरा होती है । निजरा होने पर कम हट जात है और आत्मा विशुद्ध हो जाती है । आत्मा की विशुद्धि होने पर कवल नान और केवल दर्शन प्रकट होने है । इसलिये नम्रता उड़ी भारी बीज है ।

(३)

विज्ञा भा प्रकार का खेतो कर्म के लिए पहल जमीन की कोमल बनान की आवश्यकता होता है । उसी प्रकार गुण का प्राप्त करने के लिए विनय की आवश्यकता होती है ।

(४)

अगर आप अपना कल्याण चाहते हैं और गुणवान् बनना चाहते हैं तो विनय को ग्रहण कीजिये । विनय नम्र धर्म

है। उससे हम भव में भी अनन्त लाभ प्राप्त हैं और परमेश्वर से भी महान कल्याण होता है।

(२)

ज्ञान का फल निरभिमानता है अभिमानी शान्त नहीं। विमल धृतज्ञान प्राप्त किया है, वह ज्ञान की असीमता को भला-भाति समझ लेता है। कहा जाना है कि धृतज्ञान का अपना अनन्त गुण अधिक निमल बबल ज्ञान है। उसकी तुलना में मेरा अधिक में अधिक ज्ञान भी नगण्य है। फिर अभिमान किम विरसे पर किया जाय ?

(३)

जैसे मूल के समष्टि ज्ञान पर वृक्ष-खड़ा नहीं रह सकता उसी प्रकार विनय के बिना धर्म स्थिर नहीं रह सकता। विनीत पुरुष सम्पत्ति का अधिकारी होता है और अविनीत आपत्तियों में घिरा रहता है।

(४)

विनय-धर्म आत्मा में मनुष्यता उत्पन्न करता है। आत्मा की मनुष्यता अथवा समस्त सद्गुणों का स्थान देती है। अतएव मादय (विनय) भाव का अपना भाव। अभिमान को त्यागकर अभिमानी व्यक्ति सद्गुणों से वंचित रहता है और दूसरा दृष्टि में निरस्वार एवं घणा का पात्र बनता है।

लोहा कितना कठोर होता है । एक मोहर के धक्के बहुत-सा लोहा खरोदा जा सकता है । पर जब वह नरम होता है तो उसमें आजार बनाय जात है और एक एक आजार हजारों का कीफत का बन जाना है । यह मृदुता का ही लक्षण है ।

(१)

तपना का बलीकरण है कि दुश्मन का भा मित्र बनाती है । पापान हन्य का भा पिपासा होती है । देता ना, पथर कितना खोरा होता है । उसमें यदि लक गड़ाया जाय तो वह टूट जायगा । लेकिन पथर का कुठ नहीं गिगड़ेगा । मगर रमी कितनी मुलायम होती है । प्रतिदिन उसको रगड़ लगान में पथर से भी खट्ट पड़ जाते हैं । दाम्भव में नम्रता और दाम्भता बड़ी काम का चीज है । वह जीवन का बहिया भ्रगार है । दाम्भवन है । उसमें जीवा चमक उठता है ।

(१०)

गिर वान झुकाएगा / जिसमें गुप्ता होगी, मरता टानी और माय ही जा अपने का कुछ नहीं समझेगा । जो अपने का कुछ नहीं समझेगा वही सब कुछ समझ जायगा और जो अपने आपको सब कुछ समझेगा, वह कुछ भी नहीं समझा जायगा । वह अपने को भरे बड़ा समझी परन्तु खोग उस मुच्छ समझेगा ।

(११)

आम न वस म जय फल लगन ह न पव जाता है नम जाना है । इसी तरह हमनी आदि क फल वान वक्ष नम वान हैं । मगर आकडा रही नमना है और क्वाचित नम जाना है तो टुट जाता है । आणय उ ह कि जिममें क्षत्रना ह त्वापन ह वह नमना नहीं जानता । नमना ना याय ही नमना । रिनय उडे आनमिया का वरण न आर अभिमान तृष्ठ व्यक्तिनों का वरण ह । नमन म आनमा उर माता जाता न ।

(१२)

जम अर उसर जान पर सम्पूर्ण यम धरागायी हा जाता ह उमी प्रसार विनय न अभाव में ताई नी धम नरा टिब सकता ।

(१३)

मगर मुझारा अल वरण विनय म विभूषित हागा तो उसमें धम का मउर पन ले वाना अबुर अपन आप ही अकृति नो जायगा ।

(१४)

धम में नम्रता धारण करने म भाव मिलता समार-व्यवहार में नम्रता धारण करने स जीवन होता ह । देख की मुसाफिरो में नम्रता ।

प्रति विनय भाव रखता है प्रत्येक छोटा बचन म बड़े क सामन विनम्रता पूण व्यवहार करता ह, उम, कुटुम्ब म आन द मगल रहता है । स्नेह का मधुर रस उरयता है । यह सामू का विनय करगी तो वह जब स्वय मासू, बनेगी ता उसकी उह भी उसके प्रति विनय युक्त व्यवहार करगी ।

(२१)

दबो ! रजवण हृत्थ हाने स उटकर रईसा क सिर पर भा पन्ध जात है, जखिन पत्थर बठार होन स ठोकर लात रहत है ।

(२२)

जस पानी नीच की ओर ही बहता है ऊपर की ओर नही, उमी प्रकार गुण विनयशील व्यक्ति म ही आत ह । अभिमान के कारण जिसकी गदन ऊँची बनी रहती है, उसम गुण नही आ सरत ।

(२३)

बपड़ा कही स थाड़ा सा-फट जाय और उसी समय मांघ लिया जाय तो अधिक फटने नही पायगा । अगर सापर बाही रगी तो वह फटता ही चला जाता है और पहनन के काम का नही रहता । यही हाल अविनीत शिष्य का होता है । अतएव विनय धम को अभीकार करने अविनय से दूर होना चाहिए ।

(४)

जैसे सपूत उठा धाग का भविष्य में आर भनी घटू मागू
 को भविष्य में उन्नत रहना है उसी प्रकार चम का गुरु का
 भविष्य में उत्पन्न रहना चाहिये । ममता ज्ञान का आत्मा का
 गति नाश होता है । गुरु का समर्थना चाहिये कि चम का
 ममता में मट्टाए है आध्यात्मिक १ माना पञ्चान जाग है
 और चम का समर्थना चाहिये कि गुरु ममता ममता ममान ग
 व इका म म निवाइए नावान् प्राण ज्ञेन ताव ह ।
 मा । ता माव निवृत्तान जाव २ । इस प्रकार विचार कर
 व्यस्त रहने में ज्ञान का ही उपयोग होता ॥

(५)

नाक रितना ही उचा बघो १ ॥ उचाट स नो नीचा
 हो रहगी । इसी प्रकार जेला किमना ही उडा क्या न हो जाय
 गुरु से ता नाया ही रहगा । वह लपट्या २ त्यागी ह यद डीव
 है, फिर भी वह गुरु में उँचा नहीं आ गया ह ।

(-६)

जद गुरु के चरणा में भविष्य पूर्वक मस्तक झुकाया
 जाता है ता मस्तक स ममता पापों का पाटली नीचे गिर
 जाती ह । मिर मुक्तन पर मस्तक पर रक्खी हुई पाटली का
 गिर पडना स्वाभाविक ही ह । मस्तक नम्र
 भाव दूर करता है । इससे विरुद्ध जा माग
 अगड कर खड रहते हैं उनसे मिर पर पापों की
 रा रह जायगी । वह नीचे नहीं पडपा । २

~: क्षमा :-

(१)

क्षमा दुनिया में बड़ा चीज है । उगमें इन्हें नारी की सुधरता है और परनोक भा मुग्रता है । जिसके घर में क्षमा धर्म की प्रतिष्ठा होगी उसके घर में शांति रहेगी और अंग-प्रसंग चूह नहीं जलेंगे । असंग-अनग चूहों के साथ घुटुम्बीजों के दिल ना जला करते हैं, इसका कारण क्षमा का न होना ही है ।

(२)

अगर आपके हाथ में क्षमा की उठा ससवार है तो दुष्ट से दुष्ट जीव भी आपका कुछ विगाड़ नहीं कर सकता । पानी में आग पड़ जायगी, तो वह पानी को जला नहीं सकेगी, बल्कि स्वयं ही बुझ जायगी ।

(३)

क्षमा आत्मा का वस्त्र है । जिसने इस वस्त्र का धारण कर लिया उसका कोई कुछ विगाड़ नहीं कर सकता । विरोधियों के बाध्याण उस पर असर नहीं कर सकते, प्रहार उस पर निरर्थक साबित होते हैं । उसका चित्त किसी भी आपात से क्षुब्ध नहीं होता । विरोध शक्ताता है चिह्नाता

१ बरबाद करता है और आघात करता है, पर क्षमावीर
 पुरुष उसका मामन मुस्विराता है। वह अपनी सरल और
 निर्दोष मुस्विराहट से उसका समस्त प्रयत्न को बरबाद करता है।

(४)

क्षमा-शीतलता में बड़ी शक्ति है। यह कितना ही
 पग हारकर क्या न आया हो किन्तु ही उसका रूप चिनगारियाँ
 छोड़ रहा हो और क्रोध की आग से तमनमा रहा हो अगर
 सामने वाला शीतलता पकड़ ले, अर्थात् क्षमा से धारण कर ले
 तो उसे आत शान्त पड़ता है।

(५)

भाइयो! बिगली बड़का कर नदी या समुद्र में पड़ती
 है मगर उससे कुछ भी बिगाड़ नहीं होता। वह स्वयं बुग
 जाती है और खम हो जाती है इसी प्रकार क्षमाधारा यकित
 पर समस्त क्रोध निष्फल हो जाता है।

(६)

जिमका अन्तःकरण समाप्त विभूषित होता है उसकी
 पौष्टि सार ससार में फैल जाती है। वह अपने आनन्द के लिए
 ही क्षमा का भजन करता है। क्षमा की कामना में प्रेरित होकर
 नहीं, फिर भी उसकी क्षमा फैल ही जाती है। फिर
 भुगन्ध फैलाना नहीं चाहता, फिर भी अगर कुमम
 तो वह बिना फले बने रह सकती है ?

(७)

आग से आग गान्न नहीं हाती खून से खून माफ़ रही
हाना बाध म बाध गान्न नहीं हाता । आग को शांत करने
के लिए खून का घाने के लिए पानी को आवश्यकता है ।
बाध ही उपाना न करने के लिए क्षमा चाहिये ।

(८)

क्षमा का पक्का तबित व सामने दूसरी कोई भी शक्ति
नहीं निकल सकती । जम पाना म गिरी हुई आग अपने भाप हो
गए हो जाता है उसका पक्का क्षमा व सामने दुजाता पाऊ
आदि दुर्भाव म खून नष्ट हो जाते हैं ।

(९)

ज्ञान ज्ञान म बुद्धि है ज्ञाने वाला गुरुजनों की जरा-
मी कटार पाणा को मुक्त हो आग उगपन वाला और बाध
का आग म स्वयं जलन तथा दूसरा की जलाने वाला गिना न
याय नहा है । जतनव आ बाधगहन ज्ञान है जिसका अंत-
करण ज्ञान करना है नहीं शिक्षा का सक्ता है ।

(१०)

बाध कर आप भा भाग बहूत हो गया और नाग के
सामने नागा खून की नीति अगाकार की ता उसका भी
फज्जीता हागा और आपका भी फज्जीता हागा । वह बाधी है
और आप भी फज्जीता हो जाग्न ता दोना म क्या । घनर रह

जायगा ? उमड़े ममान बन जाने पर भी आपका काट्टे लाभ नहीं होगा ? आपका आत्मा तो कथाय में कल्पित हो ही जायगा ।

:

(११)

मया दुःख मह रिता मुख नन्ही मित्रता है । प्रच्छिन्ना के कान और तार छूत समय उन्ने कट्टे गाना में मगर बाद में जब हवा का लगन व लौंग पहनती है तो उन्हा का हा बान्ना आता है अनएव भाइया प्रयत्न करा रि नुम्हार जायन म क्षमा का गुण उत्तमतर बनता बना जाय ।

(१२)

भाइया ! गाना न्न बाला अगर नीच है तो उसर बन चार गालिया न्न बाना चांगुना नाच क्या नहा गिना जायगा ? ज्ञास्तव में वही ऊंचा और बडा है जो कट्टे वचना का गानि व साथ महन कर ता है ।

:

(१३)

जिमेन क्षमा मया तलवार अपने हाथ में लेनी है मनु दुजेन उमका कुछ भी बिगाड नहीं कर सकत । पानी में मक्का हुई आग, पानी का क्या जलाएगा, वह स्वय ही

~ माया ~

(१)

भादया ! माया की शक्ति अद्भुत है । जिसके पास माया था जाता है वह, नीति-अनीति की रात को भुला देता है । सपदा मनुष्य का घमंडो बना देती है । प्रसन्न सम्पत्तिमान प्राण महानुभूति से हीन अकष्टबाध और कठार नित हो जाते हैं । सम्पत्ति में कुछ ऐसा कलापन होता है जो हृदय का शुद्ध बना देता है-संरम हृदय का भी नीरम बना देता है ।

(२)

मायाचारी ऊपर से शांत सा दिखताई देता है, परंतु उसके मन में कपाय का ज्वालामुखी भभकता रहता है । उसे स्वयं का शांति नहीं निराकुलता नहीं । जिस आत्मा में शांति नहीं निराकुलता नहीं उसे सुख की प्राप्ति हो ही नहीं सकती है । इस प्रकार मायाचारी मनुष्य अपना जीवन दुःख में जालता पुण्य और अशांत बना देता है । उसका प्राणाभ्र भव भी घोर क्लेश में व्यतीत होता है, क्योंकि माया प्रयत्न में ले जाती है ।

(१)

बटन में राग इस भ्रम में रहने है कि हमने धन बपट करके धन जमाया है परन्तु धन बपट में धन नही मिलता । धन और दूसरे मुख्य सामग्री पुण्य के योग में मिलता है । इसलिए धन बपट छाड़कर पुण्य का उपाजन करा ।

(२)

जो आदमी मकान का बहुत बिराधा है और यन्त्रों का सब मिठाई खिलावे उससे सावधान रहना चाहिए । समझना कि वह धाना देगा । घस साग मीठा बाँटकर गजब कर डालने है । दगाबाज को न करें गा थाडा है ।

(३)

माया मनुष्य का गध का तरह खेलती माडता है । जब लक्ष्मी आता है तो कमर पर ऐसा बस कर ऐसी कम कर लात लगाती है कि मनुष्य का छाती आग निकल आती है । इसलिए तो मम्यत्ति वाली मीना फुलाकर भकडता हुआ सा चलता है । और जब वह जान लगती है तो उस फूलो दुई छाती पर लान मारती है । इसी कारण लक्ष्मी के चक्कर जान पर लाग झुक जाते हैं, उनकी छाती भातर का भार धुस जाती है ।

(४)

परमात्मा के दरबार में तो उहीं की पहुँच । भीतर बाहर से एक में शुद्ध और पवित्र हाथ । जो

यगुना व ममान आर मानन म माया के समान है, उन
 हागिया का रपाटया का निम्नार ठान वाग नही है । ठान
 म दुनिया का ठग ममत हा पर नु परमा-मा का नही ठग
 मकन । माग्य निम्नार उ हत हा और मभादी का गागन
 कया उहत हा तो नि रपट उना ।

(५)

मायापारा का वात गर जिमा को विद्याम नही
 होता । मायावी मनुष्य छन-रपट बन्क दूसरा क लिय जान
 बुनता है मगर जतत वह मय ही अपन बने जान म
 फमता है ।

(६)

निवासपाव जिमी का मानद दायर नही हो मकना
 विद्यामघाता व चित्त म कभी सानि नही रहता । वह अपन
 विचारा क त तुमा से न जान कितन तान बान बुनता रहता
 ह और अपना मद छुन जान क मय से डगता रहता ह । न
 उस इस जीवन म चन मिनती ह न परलोक में ही । मय का
 भय्य डार उसक लिए बन्द ह ।



- लोभ -

(१)

यह लाभ ममत्त्व पापों का बाप है । लाभ के कारण ही ममत्त्व पापों की उत्पत्ति होती है । यही द्वेष और त्रास भाव का जनक है कोई ऐसा पाप नहीं जो लाभ के कारण न हो सके ।

(२)

लाभ ममत्त्व पापों की खान है । समस्त गुणों को घन करने वाला राक्षस है । समस्त सबड़ा का मूल है और सब अर्थों का बाधक है ।

(३)

लोभ मनुष्य का बड़ा ही भयावह शत्रु है । वह हजारों पापों का पन्ना कर देता है । कौन ऐसा भाव है जो लाभ से उत्पन्न न होता हो ।

(४)

लोभ कपाय के यशीभूत हुआ ~~ममत्त्व~~ ^{ममत्त्व} भी रहते भी धर्म बन जाता है, धर्म रहते भी

अपने वतय-आतय का मान नहीं रहता । साथी साथ मित्र व साथ भी धोखा और विद्रोहधात करन ■ नहीं चूकता ।

(२)

जिसके अन्तःकरण में लाभ रूपी विषाण प्रवेश कर गया है उससे लिए कोई भी जय य क्रय कछिन नहीं है वह अपने मामा पिता की हत्या कर सकता है अपना पुत्र और मित्र की घात कर सकता है वह स्वामी व प्राण ले सकता है यहाँ तक कि अपने महादर भाई को जान भी सेन स नहीं चूकता ।

(३)

लाभची मनुष्य कथन धन-दोलत को ही देवता है । उस धन का प्राप्त करन में और उसका प्राप्त कर लेने में कल स्वरूप कितनी विपत्ति झेलनी पड़ेगी इस बात को वह जरा भी नहीं देखता । जिसका दूध को हाँ देखता है दूध के पाम जान पर लाठी के हाने वाले प्रहार की ओर से वह अँधेरे में घुस जाता है ।

(४)

लाभ से क्रोध उत्पन्न होता है क्रोध में द्राह पदा होता है और द्राहक प्रभाव से तरक में जाना पड़ता है । विचक्षण मनुष्य भी लाभ के कारण मूख बन जाता है ।

(८)

तोभी मनुष्य सुख का स्वाद लेना नहीं जानता ।
 ;लों को भागने और पाशों का उपादन करके व मिय ह
 विन रहता है ।

(९)

सोभ से सब पापा में प्रवृत्ति होती है । जितना ईश्वर
 करीब उतनी ही गलतियाँ व करने पर छरी पड़ती हैं । सौ हजार
 पतियों का गरीब बना कर एक सत्यपति बनता है । सत्यपति
 बन कर निम्न गराया का महायना नहीं करे वह उग सचिन
 रिय घन का क्या करेगा ? छाना पर राध कर परलोक में
 ले जाएगा ? चत्रवर्ती का अमाधारण कद्वि भा अत्र यही पट्टी
 रह जाता है नव व श्रामन्त । तरी सन्मी कस तने साथ
 जाएगी ?

(१०)

५

प्रकार इन तीन पापों से एक-एक ही सन्गुण नष्ट होता है, परन्तु—नाभ—लाभ से तो सबनाश हो जाता है ।

(१२)

ज्यों ज्यों लाभ होता जाता है तथा तथा लोभ बढ़ता जाता है । अमरा बात तो यह है कि लाभ से ही लाभ बढ़ता है । लोभ बृद्धि का कारण लाभ है । अनप्य कारण की अधिकता होने पर काय की अधिकता होना स्वाभाविक है ।

(१३)

क्रोध से प्रीति का नाश होता है । माय से विनय का नाश होता है । माया ने मित्रता का नाश होता है, परन्तु लोभ से सभी कुछ नष्ट हो जाता है । वह समस्त भ्रष्टाचारों पर पानी फेर देता है ।

(१४)

ममत्त्व मसार लोभ से अभिभूत है । लोभ के कारण ही समस्त पापा का आचरण किया जाता है । लाभ पाप का राय है । मनुष्य की वास्तविक आवश्यकताएँ कितनी हैं ? उमका छोटासा शरीर है और छोटासा पेट है । ज़ोरों हँकने और घट भरने के लिए ससार भर की संपत्ति की आवश्यकता नहीं है । कराखों और लाखों

पेट के लिए

वस्त्र से ही

घाता हैं, न

कि उसे सिद्ध

-- तृष्णा :-

(१)

जमे आनाग का कही और कभी अत नहीं है उसी
 तर तृष्णा का भी कहीं अन्त नहीं है ।

(२)

ममुद्र का छोर है पर तृष्णा का छोर नहीं है ।

(३)

अगर आप दुखों की जड़ की तलाश करत चलेग ता
 नूम हागा कि वह जड़ असतोप ही है । अधिकांग लोग
 ताप के कारण ही दुखी देख जाते हैं । मनुष्य को अपना
 इन निर्वाह करन के लिए कितना चाहिए ? वह पेट में
 कितना अन्न खा सकता है और कितने कपड़े सपेट सकता है ?
 जितने की आवश्यकता होती है, उतना प्राय सभा को मिल
 जाता है । फिर भी उनके अत कारण मे अमन्तोप का आग
 दहकती रहती है । वे उस आग मे अपने जीवन की सम्पूर्ण
 शान्ति और निराकुलता को स्वाह कर दते हैं । "आवश्यकता
 है वन की और तृष्णा है मन की" । सोने को चार हाथ
 चाहिए, पर विशाल महल बनवा लेने पर भी सतोप

एक महल बन गया है तो दूसरे व मगूब किय जा रहे हैं । हजारों है तो लाखों की तृष्णा लगी है और लाखों है तो करोड़ों की कामना हो रही है । निश्चित है कि इतनी मत्स्या उपयोग में नही आ सकती फिर भी सन्तोष कहाँ है ?

(४)

धन की मर्यादा नही कराग तो परिणाम अच्छा नही निकलता । लड़कियाँ लौके जाजा और जाग बढ़ती चला जायगी । इधन डालते जान में आग कभी जलन नही हो सकती । तृष्णा भी आग है । उममें ज्यो-ज्यो धन का इधन झोखते जाजाग वह बलती ही जायगी । वह विफलता पदा करेगी । चल नही सने दगो । सा भाई एमे धन से क्या लाभ हुआ ? इस धन न तुम्हें क्या सुख दिया ? इसीलिए मैं कहता हूँ कि धन की मर्यादा कर लो । न कराग तो तृष्णा की आग में झुलसते जाजाग शांति नही पाआग और अपन जीवन का धरादि कर लाग ।

(५)

गाढ़र का अग्नि से अविन जवदस्त अग्नि तृष्णा की है । स्थूल अग्नि से तो स्थूल पदार्थ ही जलते हैं परन्तु तृष्णा की आग में आत्मा भी जलती है । तृष्णा की आग व्यापक है । सारा समार इस आग में जल रहा है । भगवान के नाम-कीर्तन से वह आग भी शान्त हो जाती है ।

जय आग स था । दात नही हाती । उमा प्रवाग म
धन स धन की नृणा गात नही हाता । जय इधन साजन
जान स आग वदनी ही गना गता है उमा प्रवाग धन का
प्राप्त करन मे धन की इच्छा भा वदनी ही जानी है ।

(५)

भाइया । उसे आग का गान करन क लिय पात्र
अपभित है, उमी प्रकार तप्या का आग को बुझान क लिय
सन्नाप धागण करन की आवश्यकता है भगवान् न निर्देशन
किया है कि परिग्रह का नम करोग आर अपनी इच्छा पर
नियंत्रण करोगे तभी यह आग दात हा सकरी है । इच्छा
का पूर्ति करन का प्रयाम करोग तो यह आग ज्वालन क
बल्ले बढता ही चली जायगी ।

(६)

अमृत-प दुख का बीज है । कितनी ही सम्पत्ति क्यों न हो, अगर उसके साथ सतोष नहीं है तो वह शान्ति प्रदान नहीं कर सकेगा । इसके विपरीत सन्तोषी पुरुष स्वल्प सामग्री में ही परम सुख का आम्बादन कर लेता है ।

(१०)

देखा तोप हवा का पान करत है फिर भी दुर्बल नहीं होते । जगली हाथिया का बादाम का हसया कोई नहीं खिलाना प रुख-मूल तिनक मारने है । फिर भी कितने बलशाली होते हैं ? इसका कारण क्या है ? असली बात यह है कि वे सत्पाप धारण करते हैं और सतोष के प्रभाव से उनका काम चल जाता है सतोष ही मनुष्य के लिए बड़े से बड़ा सज्जाना है ।

(११)

अगर सच्चा सुख और सच्ची शान्ति चाहते हो तो धन की मर्यादा करके तृष्णा पर अकुल लगाओ ।

(१२)

धनवर्ती, वासुदेव और बलदेव की सम्पत्ति पा लेने पर भी, सत्पापहीन मनुष्य कभी तृप्त नहीं हो सकता और तृप्ति के बिना सुख की प्राप्ति नहीं हो सकती । ऐसा जान कर धीर पुरुष कभी नाश-रूपी ग्रह के अधीन नहीं होते हैं ।

- इच्छा -

(१)

द्वेषा पुण्य हमारे का उदय मग्न नष्ट कर सकता
 मन विगा की उछाई मुनी और उमक मिन म डप का दाया
 ने मग्न उठा तैम चपचाप चने जान रागभार को देखकर
 तो निष्कारण हा मोहन लगता है । उगा प्रसार किसी भी
 भाविलाला का हस्तकर मपी जवने लगता है ।

(२)

भागी त्यागी का दमनर जगता है । धनवान का दल
 पर निघन कुत्ते है निराग को देखकर भागी जगता है सु तर
 गीर रूपवान पर नजर पडने मे कृम्य का जान हाती है ।
 यह स्वभाविक है । कमर और काजल म बानी नहीं है ।

(३)

पानी की बग होना है तो मर प्रसार की प्रेमपनियाँ
 फवली-फवली है । मि तु जसमा नामक एम मग्यडी इसका
 जयवाद है । जम जम बट्टि हाती है वह मखनी जानी है ।
 घषा नवासा का पमन नहो आती तो कहा भाई । इसम पानी
 का क्या दाप ? इसी प्रकार जो पुण्य दुर्गुण का भ्रमादा बना

हुआ है वह सगुणा और सत्गुणका तभी की दृष्टि २ कर दिया
 तो भोजन से तपता रहता है और गुप्तता जाता है। दुगुणी का
 गुणवान भी बात समझ नहीं आता यहाँ तक कि जिगा जिग-
 पापी का तो परमात्मा का रुद्धिमा भी नहीं बनता है। इसमें
 गुणवान का क्या दाप है।



ता भी दुबका हा बना रहता है । द्वेष से मनुष्य को घोर हानि उठानी पड़ती है । द्वेषी मनुष्य स्वयं ता हानि उठाता ही है पर दूसरा का भी हानि करता है ।

(१)

द्वेष एक प्रकार का अग्नि है । यह अग्नि जब दृश्य में भस्मकरी है तो मनुष्य याकुन हो जाता है । वह उस ग्राह से दूसरा को जलाना चाहता है । दूसरा जले या न जले वह स्वयं तो बुरी तरह जल ही जाता है ।

(६)

दूसरा के द्वेष भाव का शान्त करने का उपाय यह नहीं कि उदर में द्वेष किया जाय, भाग से भाग भाग नही होता । आग का शांत करने के लिए जल अपेक्षित है । इसी प्रकार द्वेष का नाश मन्त्रों से होता है ।

(७)

भाय्या ! अगर आप अपने जीवन को उन्नत और विन उन्नत करना चाहते हैं तो द्वेष का परित्याग करो । द्वेष की भाग में अपने आपकी जलाना तब भी बुद्धिमत्ता नहीं है । द्वेष का दुष्पण आपको पतन के गहरे गड्ढे में गिराने वाला है । द्वेष की आग आपके समस्त मङ्गलों को जलाकर भस्म कर देगी उससे आपका जीवन निष्फल हो जाएगा ।

(१०)

राग और द्रव्य दोनों ही ब्रह्म के कारण हैं । इनके प्रभाव से मन और आत्मा की स्वस्थता नष्ट हो जाती है । इसी कारण गायत्रि में इन दोनों का बोज बँटा है । अतएव जो आत्मा का ब्रह्मचरण करना चाहता है वह राग-द्रव्य का निरन्तर घटाने का ही प्रयत्न करना चाहिये । उह अधिक से अधिक समभाव का वृद्धि करनी चाहिये ।

(११)

राग भाव अनादि काल से आत्मा के साथ लगा हुआ है । इस राग की घाग में आत्मा असम रही है । राग ही बल-मान बल-जन जोर यथान्याय चारित्र्य में बाधक है । ज्योंही राग भाव निमल हो जाता है वही आत्मा स्वयं, सबदर्शी और धीतराग चारित्र्य का अधिपति हो जाता है ।

(१४)

मादृश ! अगर आपका स्नेह ही करना है तो परमात्मा में स्नेह करो । परमात्मा के प्रति प्रगाढ़ प्रीति करोगे तो मत्तान्ध पन्थों सबका प्रीति हट जायगी और उससे आत्मा का उद्धार और ब्रह्मचरण होगा । परमात्मा से प्रेम न करने की लाख सभार की वस्तुओं से प्रेम करते हैं, वे अपने निज स्वयं का नारा खोजते हैं ।

-: निंदा :-

(१)

अगर आप दूसरा की निंदा करने वाले ह तो समझ लीजिए कि आप दुनिया की गंदगी का खाज-खाज कर अपने भातर भर रहे हैं । अपने आपका मलीन बान बन रहे हैं । अपने माग में काँट बिछाने चले हैं । क्याण के मगल द्वार में ताला लगाने चले हैं ।

(२)

कौब का कितनी हा भिठाई खिलाओ, वह गंदगी पर बैठे बिना नहीं रह सक्ता । पर कीबे की कीन आदर करता है इनो प्रकार निंदा की कही कद्र नहीं हाती । निंदाक से पाला पडता ह तो लाव पडते ह अभी जनाब, आप तशरीफ ल जाइए, वही आपक मुख से काडे न सड पड ।

(३)

दुसर क दोषा का डोल पीट कर ही क्या तुम गुनी बन जाना चाहत हो ? नहीं दूसरे क दोष देखना और उह पगमा तो स्वय एक महान दोष ह । इस दोष का सबग करव तुम नेवी हा बन सकते हो गुना नहीं बन सकते ।

जा ता। मा.वी. यावत् या भाविता तत्त्व का प्रत्यक्ष
समझ गया है ज्ञान-ध्यान भी करता है, तपस्या भी करता है,
फिर भी अगर वह रटना है कि हम अच्छे हैं और दूसरे बुरे
हैं हम धर्मात्मा हैं और दूसरे अधर्मी हैं हम भक्त हैं और
दूसरे दुष्ट हैं, तो अपना मुँह में अपनी महिमा करना है और
दूसरे की निंदा करता है। वह अपनी करनी पर पाना फेरता
है। वह अपना आत्मा का निराना है। इसका ज्ञान, ध्यान तप
और त्याग आत्मगुद्धि का कारण न होकर शपाय का पापन
भन जाता है।

(८)

विवेकवान् पुरुष किसी की निंदा नहीं करते। वे
सोचते हैं कि पगड़ी निंदा करने में हमें क्या लाभ है ? निंदा
करने से मुँह माँटा नहीं होता सपना नहीं मिलती, बड़ाई भी
नहीं मिलती बन्ध्याण भी नहीं होता। यही नहीं, परनिष्क
समयगार लोगो में होने दृष्टि से देखा जाता है और जानियों
की दृष्टि में यही पाप का उपादन करता है।

(९)

समजदार व्यक्ति नारक-प्रकृति लोगो का अपने पास
नहीं पटकने देते। बदाचित्र उनको रात सुता लेते हैं ता उस
पर ध्यान नहीं दन और सुना अनसुना कर देते हैं। अथवा
गुनान वाले से स्पष्ट कह देते हैं कि भाई तुम अपना काम

मो । दूसरा मुण मानी दता ह तो दन दा । जब मेरे सामने दा तो मैं निपट लूँगा । इस प्रकार माफ़ उत्तर दन मे भिड़ाने वान का माहम टूट जाता ह । वह फिर उसके सामने नहीं रोवना ।

(७)

माइया ! निन्दा करन स बचा । दूसरा की रास्त कर अपने मन्तव पर बिखर लने मे क्या लाभ ह ? मसार म पुणवन बहुत ह । उनक गुणों का दस्तो और प्रशमा करा । इसम आपका आनन्द ही आनन्द प्राप्त हागा ।

(८)

पाप का निन्दा करा, भगर पापी की निन्दा मत करा ।

(९)

साधु की भूल देखकर जा नि दा करन ह हसी करत ह उह समझना चाहिए कि लाठा कसी भी टूटा फूटा क्या न हा, मटक का तो वह पाइ ही सकती ह ।

(१०)

आत्म-निन्दा करन स अपन दोषा व प्रति असत्ताय जागत हाता ह और आत्मा की शुद्धि होती ह । पर की निन्दा करन म आत्मा की मलिनता उबता ह । आ मा वा पतन होता ह । और लाभ कुछ हाता नही । अतएव अगर आप अपना कल्याण चाहत ह तो पर-निन्दा व पाप स दूर रहना चाहिय ।

जा सा। सा-वा श्रावक या श्राविका तत्त्व का स्वस्व
मयज्ञ गया। त-त-अथवा ना कस्ता, तप-या भी ररता है,
किर भी अथर यह ररता है कि हम अन्ध ह जाग हमर बुरे
ह, हम धया या ह जीर दूसरे अधर्मी ह, हम भक्त ह और
हमरे दुष्ट ह जो अपने मुन म करनी मरिमा करना ह और
हमर की नि रा ररता ह। यह अपनी करनी पर पाता फरता
ह। वह अपनी आत्मा का मिताता ह। इसका जान अथा, तप
आर त्याग या मनुष्य का कारण न हार कपाय का पीपर
घन जाता ह।

विवक्वान पुरुष किसी की निंदा नहीं करत। वे
साधने ह कि परादे निंदा करने से हप क्या लाभ ह ? निंदा
करने से मुह मोठा नहीं होना सपदा नहीं मिलनी बडार्ड भी
नहीं मिलता कल्याण भी नहीं हाता। मही नहीं परनिष्क
समझदार लोग म हीन दृष्टि से देगा जाता है और नाविया
का दृष्टि में यथ ही पाप का उवाजन करता ह।

समझदार ध्वनि नारद-प्रकृति लागा का आन पाम
महा पटमन देत। वदाचित उनको याग मुन रने है ता उस
पर ध्यान नहीं देत जीर सुना धनमुना कर देत है। अथवा
सुनाने वाले से स्पष्ट कह देने ह कि मार, तुम अपना काम

को। दूसरा मुँह गाली देता है तो दन न। उद मर मर
 दा तो मैं निपट लूँगा। इस प्रकार माफ़ उनर दन से प्रिय
 का का साहस टूट जाता है। वह फिर उमक मानने में
 बाँझता।

(७)

भाइया ! निंदा करन में बचा। दुमर्गे का रूप
 फिर अपने मस्तक पर बिखर देने में क्या सामर्थ्य ? मर्यादा
 का ज्ञान बहुत है। उनके गुणों को देखा और प्रमत्त भरा।
 हमें आपका आनन्द ही आनन्द प्राप्त होगा।

(८)

पाप की निंदा करा मगर पाप की निंदा पारसी।

(९)

साधु की भूल दलकर जा निंदा करन में, दावा कर
 है उह समझना चाहिए कि माठी बसी भा टूटि कुग का म
 ही, मटव का ता वह फाड़ ही सकती है।

(१०)

आत्म-निंदा करन से अपने दोषों का प्रति अन्वेषण जागृत
 होता है और आत्मा की शुद्धि होती है। पर निंदा करन
 से आत्मा की मलिनता बढ़ती है। आत्मा का पतन होता है।
 और लाभ कुछ होना नहीं। अतएव अगर आप अपना
 बाह्य है तो पर-निंदा का पाप से दूर रहना चाहिए।

~: पाप :-

(१४)

परम्परागामी सम्पद भा राखण के पुतल की दुष्का
करन में पीड़ा गहो रहते । इसका कारण यह है कि पाप का
आत्मा भा पाप में गुना कराना है । आत्मा का अगली स्वभाव
उस पाप के प्रति गुना कराना मित्यसाता है ।

(१५)

मनुष्य का जीवन एक चौराहा है । चौराहे पर
प्रकाश-स्तम्भ लगा रहता है जार उस प्रकाश में चारा आ
जान वाले रास्ते दिखाई देते हैं । इसी प्रकार मनुष्य जीवन :
चारा गतियों के लिये रास्ते जाते हैं । शास्त्र और सद्गुरु के
प्रकाश इन चौराहे पर मौजूद हैं । चारा गतियों का भाग उ
प्रकाश में बना जा सकता है । आप यह भी जान सकते हैं
किम गति में जान से क्या हासल होगी ? जिन्हें सुखमय हाल
प्राप्त करनी है उन्हें द्रवगति और मनुष्यगति को ग्राह्य मकडना
चाहिये अथवा घम कम करना और ग्राहा में बचना चाहिए ।
पाप बहुत भयंकर तम है पर अन्त में बहुत बुरे मायित्व है ।

(२)

भाइया ! पापी का आत्मा दुबल होती है । पाप एना
 बाग है कि वह मनुष्य के अन्तस्सल को कुतर-कुतर कर
 निवृत्त जोर निम-बावना देता है । मच्चाई व आमर पाप क्षण
 भर नष्ट नहर सकता है ।

(३)

कष्ट की प्राप्ति के लिए पाप का आचरण करना आम
 पाल व विचार स चबव की गती करने व समान है । -

(४)

पाप मनुष्य को अपनी ही निगाहों में गिरा देता है ।
 पाप में एक तमो विचित्र स-पापन हाता है कि वह हृदय का
 घाटना रहता है । पापी का आत्मा मरव मरक रहती है ।

(५)

अज्ञानी पुरुष पाप-कर्म से तो बचने का प्रयत्न नहीं करता किन्तु पापकर्म के फल में-दुःख से-बचने का प्रयत्न करता है । किन्तु ज्ञाना साचना है कि विषफला में बचने का ठीक उपाय यही है कि विषयों को जड़ से उखाड़ दिया जाय । न रहेगा वास न बजगी वासुरी । जिस वक्ष से दुःखों व विष फल उत्पन्न होते हैं, उस वक्ष का ही उखाड़ देना में बुद्धिमत्ता है अर्थात् पापकर्म से उत्पन्न होने वाले दुःखों का नाश करने के लिए पापकर्मों से दूर रहना ही उचित है ।

(८)

जब माण जान के लिए पीछे बंदम उठाने वाला आदमी बुद्धिमान नहीं कहा जा सकता, उसी प्रकार धन, पशुप आदि सुख का सामग्री प्राप्त करने के लिए पाप का आचरण करने वाला व्यक्ति भी विवेकवान् नहीं कहा जा सकता ।

(९)

तुम सुख पान के लिए पापों का आचरण करते हो मगर ऐसा करके कदापि सफल मनोरथ नहीं हो सकते ।

(१०)

विषपान करके चिरजीवन की अभिलाषा करना पीर मूकता नहीं तो क्या है ! इसी प्रकार पाप करके सुखी बनने की अभिलाषा भी मूकतापूर्ण ही कही जा सकती है ।

वल्पवक्ष या उसके फलों की वामना से प्ररित होकर जो बबूल बनाता है, उसे क्या कहा जाय ? वत्रल बाने स वल्प-वक्ष क फला की प्राप्ति होना सम्भव नहीं है इसी प्रकार पाप भर आचरण करके पुण्य-फल की आशा रखना भी दुरागा मात्र है ।

(१०)

जमे नीम क वक्ष में आम के फल नहीं लग सकते । जमे लाल मिच छाने में भुह भीठा नहीं हो सकता उसी प्रकार पाप करने से सुख नहीं मिल सकता ।

(११)

कागज का नाव बना कर और उस पर सवार होकर अगर कोई समुद्र पार होना चाहता है तो उस पागर के सिवाय और क्या कहा जा सकता है ? इसा प्रकार जो जुल्म करके, पाप करके फलना-फूलना चाहता है अर्थात् सुखी और सौभाग्य-शाली बनना चाहता है वह भा मूल्यों की कतार में ही खड़ा होने योग्य है ।

(१४)

बीज बोने की तुम्हें स्वाधीनता प्राप्त है । किन्तु बीज बो देने के बाद अकुर इच्छानुसार पदा नहीं किये जा ^{सकते} तुम चाहो कि पापाचरण करके हम दुःख के बीज

उनसे मुझ के अङ्गुर फूट निकल यह सबका जन्मभय है । अपना
निसाने भा सम्मति है कि चने के बीज में गहूँ का बीधा नहीं
उत्पन्न होता मगर तुम उससे भी गये बाते हो ।

(११)

पाप का परिणाम तो किसी के लिए भी अच्छा नहीं
होता । देखो रावण कितना प्रतापशाली और प्रचण्ड राजा था ।
उसका नियत बिगड़ गई । वह भीना जमी आदेश सत्ता का
हरण करके ले गया । उस छोटे पाप से उसका समस्त पुण्य
क्षाय हो गया । बढिया-बढिया पीप्लिक खोजे डाल कर सीरा
बनाया जाय । किन्तु घत में उसमें सखिया मिला दिया तो
वह सीरा श्राणा का सहारण होता है । इसी प्रकार एक भी
भयकर पाप अनक सुदृती के फल का दवा लेता है ।

(१२)

मनुष्य अपनी करतून का भूल आता है । परन्तु वह
करतून अपना फल देना कभी नहीं भूलती । यथा समय उसे
उसका फल अवश्य भोगना पड़ता है । पाप का प्रतिकूल फल
हृदय होता है । इसीलिए मैं आपको सावधान कर रहा हूँ कि
अपना क्याण चाहते हो तो पाप में बचा, पाप में बचोग तो
अपना ही जान लेंगे ।

(१३)

दूसरा का पापाचरण करते देव कर स्वयं पापाचरण
करना माग्य नहीं है । अधम करने परमा अमा करने में अन्त में

दिन नहीं ग्रहित हो जाएगा। तिसी बार का कराडपति हान
नहीं था। वे त्रिशासिया के दिवानिया हा रहने हैं। उट्टम
माग्री और कजर चारा वगन हैं फिर ना मूज व मूज हा
रहते हैं।

(१८)

अगर घाप अरमा आमा का बचाता बान्त ह ता
पापा से दूर रहा, पाप की मरणात्ता करने म भी बारी और
पापा भी निदा रूप पाप मे भी उवा। अपनी आत्मा का
नि आप बनाआम ता निपाप या ताजाग। आपका कल्याण
रहा।

(१९)

पापाकरण करने वाला स्वय ही पतित नहीं होता।
वरन दूसरों की भा पतित होने की प्रेरणा करता है।

(२०)

भाइया ! पाप कम चार है और जब इनम सावधान
रहकर बचाग तभी तुम्हारा कल्याण होगा। जो पाप कर्मोंम
घबने का मरुत्प कर लेत हैं वे अन्तम मपदा क घनी बन
जात हैं।

(२१)

जीवित रहने के लिए विष का पाप करना जमी मूखता
उसी प्रकार सुखी घनने के लिए पाप का आचर
मूखता है। यह उलटा प्रयोग है।

(२१)

निरवक बातें बना कर अपने भविष्य की कटुदम्य बनाना कहा की बुद्धिमत्ता है । प्रयाजन से पाप करने वाला कदाचित् क्षम्य हो सकता है किन्तु निष्प्रयोजन ही आत्मा को पाप के भार से लादेन जाना कम क्षम्य समझा जा सकता है ?

(३)

दहा को मरने में सम्मथन निवर्त्तता है । यह ज्ञान दुनिया जानती है और आप भी जानते हैं । पर क्या ज्ञान तन मात्र से सम्मथन निवर्त्त आता है ? नहीं, दिया क्या बिना, लोही का मध्य बिना सम्मथन नहीं निवर्त्तता । इसलिए हमारा कहना है कि पापा से बचा । पापा से बचे बिना तुम्हें स्वर्ग और मोक्ष नहीं मिल सकता ।

(२४)

दुःख में बचना हो तो मरण में उद्योग पर चलना । पाप-पक में आगुल निमग्न रहोग और सुख की चाहोग तो ऐसा नहीं हो सकता ।

(२५)

जो प्राणी के मरण में धुल्ल हो जाता है, वह किसी का नहीं सुनता । इसी प्रकार जिसकी आत्मा पर पापी का गहरा नशा छा जाता है वह जानो और परोपकारी पुरुष की भी बात नहीं सुनता । कदाचित् सुनता है तो एक कान से सुनकर दूसरे कान से बाहर निशाल देता है ।

-: रात्रि भोजन :-

(१)

भाइयाँ ! रात्रि में भोजन करना बड़ा भारी पाप है । रात्रि में भोजन करने वाले को क्या पता चलेगा कि भोजन में दाल में कीड़ो है या जोरा है ? वह तो कीड़ों का भोजीरा समझकर खा जायगा ।

(२)

गान्धियाँ ने रात्रि भोजन को अग्रा भोजन कहा है । सूर्यास्त होने के बाद म्फट दिखाई नहीं देता, अतएव रात्रि भोजन बहुत घुरी चीज है । बुद्धिमान पुरुष कभी रात्रि भोजन नहीं करते । अरे स्नान के लिए दिन ही बहुत है ॥ रात्रि को भोजन करने में क्या फायदा है ?

(३)

हजम होने से पहिने ही या जाओगे तो पाना पधान के लिए पेट की मशीन को उहुन ज्यादा मेहनत करना पड़ेगी और इससे मशीन जल्दी कमजोर हो जायगी । जो लोग सूर्यास्त से पहले ही खा लेते हैं उनके पेट की मशीन का विधान मिल जाता है । गहरी नींद आने के कारण वह स्वस्थ रहन है ।



(७)

रात्रि में बिडियाँ, कसूर और कौवे आदि भी खुले का नहीं जाते हैं तो प्राण तो दम्मा है । रात्रि में भाना पिन कुल मना किया गया है । रात्रि में न खाने से राह महीने में छह महीने की तपस्या बिना जोर लगाये हो हा जाते हैं । इससे गुप्त गति का भी बज होता है और अशुभ गति का बज टन जाता है ।

(८)

माइयो ! रात्रि भोजन त्याग किसी सम्प्रदाय का ही आचार नहीं है । उस दया, दान, क्षमा, करुणा, परोपकार, ध्यान, म्याध्याय, सत्य आचौय, ग्रहाचम आदि का साधारण है अर्थात् उन्हें किसी सम्प्रदाय का धर्म नहीं कहा जा सकता । उसी प्रकार रात्रि भोजन का त्याग भी सामान्य है । क्या जना के लिए और क्या वज्जया के सभी के लिए यह आवश्यक है । जो भी रात्रि भोजन का ह करेगा अपना इहलोक सुधारेगा और परमोक भी सुधारेगा वह अनेक बीमारियाँ से भी बचेगा और दुर्गति से भी बर्कगा ।



-: धन-वैभवं :-

(१)

भाइयो ! दान प्रमाण पापों में हिमा असाध्य तथ
भीर मयून को नरह पविग्रह मा महान पाप है । इससे आत्मा
का अथ पतन होना है अन्ति या रक्षा चाहिए कि परिग्रह
पर पापों का बाप है ।

(२)

धन से धर्म नहीं हाता बरत धन न त्याग स धर्म
होना है ।

(३)

जैसे स्वच्छता के लिए पहले मल लगाना और उसकी
सफाई करना आवश्यक नहीं है, उसी प्रकार धर्म की आगधना
के लिए पहले धन उमाना और फिर उसका त्याग करना
आवश्यक नहीं है ।

(४)

जिसके शरीर पर मल नहीं है वह नये सिरे से मल
धुलने से यही उसकी स्वच्छता है, इसी प्रकार जिसके पास

धन नहीं है वह धन कमान की आकांक्षा न करे। धन के प्रति ममता और मूछा का भाव उत्पन्न न होने द उसी में उनकी धननिष्ठता है।

(५)

धर्म व लिहाज से धन भी कीचड़ के समान है। धर्म साधना करने के लिए धन का परित्याग करना पड़ता है। ऐसी स्थिति में जो धन के प्रति ममत्त्वहीन है वही सबसे अधिक विवशाली है। जो उपाजित किम हुण धन का परित्याग करता है वह भी विवशाली गिना जायगा। किन्तु जो धर्म के लिए पहले धन कमाना चाहता है और फिर उसका त्याग करना चाहता है उसे बुद्धिमान किस प्रकार कहा जा सकता है। वह तो उन्टो गंगा बहाना चाहता है।

(६)

किसन कहा कि पस में ही धर्म होता है। धर्म की आराधना का तराका ता निरासा ही है, ऊँचे धर्म की आराधना पैसे से नहीं होती बल्कि पैसे के परित्याग से होती है।

(७)

धन सबड़ों मूसीबता का घर है, यमछो की क्षोपड़ी है, अज्ञाति का मझार है, चिन्ताओं का कारण है, धर्म और ईश्वर को भुला देने वाला नशा है। धन विवक का विनाश कर देता है। धनी आदमी नहीं सोच सकता कि भूमे चार

रोटियाँ और नन डबन का कच्चा नाहिा इसमें अपना धन
 मेरे क्या काम आयगा ? वह क्या है और सिर्फ व्याकुलता ही
 उपन्न करता है । उसमें शान्ति नहीं मिलता । सुख नहीं मिल
 सकता । यही कारण है कि लोग धन की ही मक्खन समझ कर
 उसकी उपासना किया करते हैं और आत्मनिर्याण की तरफ
 ध्यान ही नहीं देते ।

(८)

भाइयो ! हम पौन्यस्तिक सम्पत्ति के मादृ में क्यों पड़
 हा ? इससे तुम्हारी आत्मा का सग मादृ भी बर्णाण नहीं
 होगा, बल्कि यह अकल्याण का कारण बनगी । शान्ति के धन,
 भावपूर्ण या चेतन धन की प्राप्ति के लिये ब्रह्म का ही प्रयत्न
 करो । उससे सुख पायाग । जो महाभाग चेतन धन से सम्पन्न
 होते हैं, धर्म धन के धना हान हैं उनके सामने मन्त्रानि, करोड़
 पति राजा अश्वत्थों और महा शत्रु भी नमस्तक
 होते हैं ।

(९)

भारत और दृष्टि दीक्षा कर देखते हैं तो ऐसा जान
 पड़ता है, माना दुनिमी बावली हो रही है । रात दिन धन
 के मान में लगा है । धनापाजन का कोई भी तरीका क्या न
 हो, उसमें अपना न मनोप्य सक्ता नहीं करता । देश का हानि
 हा तो भले ही, धन जाय ता जाय, नानि मर्यादा कर भय हाना
 हो तो बला से और आत्मा पपा से लिप्त हो तो हा मगर

धन नहीं है वह धन कमान की आकांक्षा न करे। धन के प्रति-
ममता और मूर्खता का भाव उत्पन्न न होने दे, इसी से उनकी
धननिष्ठता है।

(५)

धर्म के लिहाज से धन भी कीचड़ के समान है। धर्म
साधना करने के लिए धन का परित्याग करना पड़ता है।
ऐसा स्थिति में जो धन के प्रति ममत्त्वहीन है वही सबसे
अधिक विवेकशाली है। जो उपासित मिये हुए धन का परि-
त्याग करता है वह भी विवेकशाली गिना जायगा। किन्तु जो
धर्म के लिए पहले धन कमाना चाहता है और फिर उसका
त्याग करना चाहता है उस बुद्धिमान किस प्रकार कहा जा
सकता है। वह तो उठो मगा बहाना चाहता है।

(६)

किसने कहा कि पसं न ही धर्म होता है। धर्म की
आराधना का तरीका तो निराला ही है, ऊँचे धर्म की आरा-
धना पसं से नहीं होती बल्कि पसं के परित्याग से होती है।

(७)

धन सबड़ा मूर्खता का घर है, बगडोर की झापड़ी है
अशान्ति का मन्दार है चिन्ताओं का कारण है, धर्म और
ईश्वर को भुला देने वाला नशा है। धन विवेक का विनाश
कर देता है। धनी आदमी नहीं सोच सकता कि मुझे चार

रोटियाँ और तन छेवन को करना चाहिए इससे ज्यादा धन मेरे क्या काम आयेगा ? वह क्या है और मित्र व्याकुलता ही उत्पन्न करता है । उससे शांति नहीं मिलता । सुख नहीं मिल सकता । यही कारण है कि लोग धन को हाँ सवस्व समर्पण कर उसकी उपासना किया करते हैं जोर आत्मकृत्याण की तरफ ध्यान ही नहीं देते ।

(८)

भाइयो ! इस पौदगतिक सम्पत्ति के माह में क्यों पड़ जा ? इससे तुम्हारा आत्मा का नेश मात्र भी बर्बाद नहीं होगा, यदि यह अन्त्याण का कारण बनगी । आत्मिक धन, भावधन या चैतन धन को प्राप्त करने एवं बढ़ाने का ही प्रयत्न करो । उससे सुख पाओगे । जो महाभाग चैतन धन से सम्पन्न होते हैं धर्म धन के धनी हान हैं उनके सामने मन्वपति, क्राष्ट पति राजा चक्रवर्ती और महा तन वि वेचना भी नतमस्तक हात हैं ।

(९)

चारों ओर दृष्टि दीहा कर देखत है तो ऐसा जान पड़ता है, मानो दुनियाँ बायसी हो रहा है । रात दिन धन कमाने में लगी है । धनोपाजन का कोई भी तरीका क्यों न हो, उस अपनाने में मनुष्य मकाध नहीं हो तो भले हो, धन जाय नो हो तो बन्ना से और आत्मा

घन निर ज्ञाना चाङ्गि । निवारिया भर जानी चाहिये । जैम
गमय जावन धन न विर मर्मनि है । घन दवता के धान
अवता अन्ना को जल का बकल बना डाला ह । इस प्रकार
धन न धिया नाम आत्मा का स्वन कर रहे हैं और जानते हैं
कि यह ७मार काम ज्ञान वाला नहीं । यह निरुता अस्मृत
थाउ है ।

रही ह ? भरे । पसा देव नहा, दानव हैं, इससे तुम्हें सुख नहीं मिलेगा, बल्कि यह तुम्हारे सुख को छीन लेगा । मगर यह बात तुम्हारे गले बर्तौ उतर रही ह । आँखों देखते भा आ अनजान बता रहवा ह, उमका कोई क्या करे ?

(१०)

लक्ष्मी का वाहन जो उलूख ह, मा आना-घकार का बर्ती ह । जहाँ लक्ष्मी ह अयात धन ह, वहाँ अज्ञान है, भ्रमता ह ।

(११)

धन व नाग व ता बकना कारण मौजूद है । चोर चुरा ल जात ह टाकू लूट ले जाते ह, बाढ़ बहा ले जाती ह, आग नष्ट कर देती ह भाई-ब व छीन लत ह या दुर्वसन म पडकर उछा देत ह । ऐसी नागोव वस्तु का अभिमान बसा ? सब लो यह ह कि अभिमान करने की ता बान ही तूर धन या अथ सामारिक पदार्थ तुम्हारे ह ही नहा । तुम बेगन हा, धन आदि वस्तुएं जड ह । भला जड पदार्थ चेतन के किस प्रकार हो सकते ह ?

(१४)

भाइयो ! यह धन दौलत और राज्य लक्ष्मी वेश्या के समान ह । यह स्त्रियर बनि वाली नही ह । आज जपल म खड़ी हा जाती हैं बच दसरे की

विद्वान्म वरना सिर्फ नादानों के सिवाय आर कुछ भी नहीं है ।
यह आज तक किसी भी राजा महाराजा या ठेकाधार को
बतबर नहीं रहा है ।

(११)

पराक्ष वन्तु ■ भ्रम हाना महन किया जा सकता है ।
मगर आर्यों में दिखाई देने वाला वस्तु का भी उसका समझना
वहाँ तक उचित है ? तुम हम और सभा प्रत्यक्ष दवा है कि
बाई भा सम्पत्ति पर भय में माय नहीं जाता निक पाप और
पुण्य हो साथ जाता है । फिर धर्म और सम्पत्ति के निय पापों
का उपाजन करना क्या बुद्धिमत्ता है ? नहीं यह अविद्या है ।
मूल्यता है ।

(१२)

पैसे से पाप बदल कर पुण्य नहीं बनाया जा सकता ।
यह तो अपने स्वल्प में ही अपना फल देता है और देता
रहेगा ।

(१३)

सोना मनुष्य की मनुष्यता की गट कर देता है ।
गरीब और अमीर के बीच फौल दी दीवार खड़ी करने वाली
वस्तुओं में सोना भी मुख्य है । सोना मनुष्य को निंद्य बना
देता है, घमंडा बना देता है और राक्षस बना देता है ।
आश्चर्य है कि फिर भी लोग इस प्यार करते हैं और इस
पाकर अपनी भावनाओं को य समझते हैं ।

जित सम्पत्ति के लिये तुम रात दिन एव कर रहे हो, बनोति और गोति को परवाह नही करता है, धर्म और अशर्म का विचार नही करते उस सम्पत्ति में स कथा-नया साथ नही आओगे ? मित्रों ! अति शान्त । तम्हार पुरमा बन गया और ये कुछ भी साथ नही ले गया । अब क्या तुम साथ ले जा मनाग नही हगिज नही । सब कुछ यही पडा रह जायगा । धर्म मित्रता हा साथ पराया हा जायगा । तम भी हम बान का जानने हो और मनी कीति जानत हा । फिर को अम में पडे हा ? आश्चर्य ह कि फिर भी परमेश्वर को सुधारन की तरफ स्थान नही दे हा । अमर तुम जि हा ता सबडा में नबान्ग भ्रम कर दिय जाओगे और यन्त्र ममनमान हो ता अमीन में गहवा तान् कर न्वा दिष्ट जाओग । कम किया हुआ पुण्य और पाप ही साथ जायगा ।

जावन मदिरहने वाला नही ह और सम्पदा साथ जाने वाली नही ह । पगार का आवश्यकताए परिमित हैं फिर क्यों दुनिया भर की पूजा अर्चना निबारी में न करने के लिए पाप करता हा ।

जो लोग अपने जीवन का अधिक भाग धन कमाने में व्यतीत कर चुके हैं उन्हें उद्धार निवत हा जाग चाहिए । जो दुगो

के अंतिम श्वास तक मध की तरह सदे-सद फिरना ठीक नहीं, दुनियाँ के घटा छाड़ो और परमात्मा की प्रीति में वध रहो । धर्मोपदेश मुनने का यही सर्वोत्तम सार है ।

(२१)

संपत्ति का रोग बड़ा ही भयानक होता है । अन्याय रोग तो प्रायः एक-एक ही विचार उत्पन्न करते हैं, मगर धनी का रोग एक साथ अनेक रोगों को उत्पन्न कर देता है । जिसे धन की बीमारी हो जाती है वह बाँटों से बहिरा हो जाता है, मुँह से गूँगा हो जाता है धार्मिक से अंधा हो जाता है और उसकी तमाम उद्विग्न विचार प्रवृत्ति बाँट जाती है ।

(२२)

धन के मद में उमलत बनाव हुआ मनुष्य गरीबों से बात भी नहीं करता । उनसे बालने में वह अपनी बेइज्जती समझता है । यही धनवान का गूँगा होना समझना चाहिए । धनी धार्मिक बत य और अवतार्यक भाग को नहीं देखता, नीति और अनैति का पथ उसे उही मूर्खता वह नीन-दुनियाँ की तरफ दृष्टि भी नहीं डालता यही उसका अवापन है ।

(२३)

संपत्ति की बीमारी मनुष्य को हृदयहीन बना देती है । सम्पत्तिशास्त्री के पड़ोसी के बानस भूम से बराह रहे हों तो

वह उनकी परवाह नहीं करना । उनकी दुःख-भरी यात्रा उनके कानो तक नहीं पहुँचनी । उसके चित्त पर उसका कुछ भा प्रभर नहीं होता । यह यहिगपन नहीं तो क्या है ?

(२०)

जा सोग श्री-सम्पन्न होने पर भी भगवान् व भग्न होने हैं उन्हें यह सपद रोग नहीं हा पाता । भक्ति का अमृत रसायन उसके रागा का गमन करता रहता ह । इस प्रकार लक्ष्मी के होने हुए भी जा लक्ष्मी के मद से ग्रहित हो हैं वे इस राग में बचे रहने हैं ।

(२१)

समार का समस्त बभ्रव यही रह जाता ह । यह आज तक किसी के साथ गया नहीं ह और जायगा भी नहीं । धर्म ही साथ जान वाला ह । ऐसी स्थिति में बभ्रव व चक्कर में पड़कर धर्म विस्मरण कर देना उचित नहीं ह । शास्त्रों को त्याग कर अशास्त्र का अनुगमन में बुद्धिमत्ता नहीं ह । आरमा की गुण सम्पत्ति ही उसके गान्धर्व बभ्रव ह उसे प्राप्त करने का मार्ग साधुपन ह ।

(२२)

किसी व हव में बुरा मत करो । तुम्हारा बिया तुम्हें ही भोगना पड़गा । बुरे विचारों का और बुर कार्यों का फल भी अच्छा नहीं हो सकता । निम घन-दौलत के लिए तुम

पापमय विचार करते हो, वह आत्मा क साथ नहीं जायगी। वह पाप ही आत्मा क साथ जायगा और तुम्हें पीड़ा पहुँचायगा धन सम्पत्ति और भाग मायगी तो चार दिन की चाँदनी और उसका बाद जरूरी गम होगी।

(७)

तुम्हारी यह रईसी और सेठई किसके सहारे खड़ी है ? उचारे गरीब और मजदूर दिन रात एक करके तुम्हारी तिज्जारिया भर रहे हैं। तुम्हारे रईसी उन्हीं के बल पर और उन्हीं का मिहनत पर टिकी हुई है। कभी कृतज्ञता पूर्वक उनका स्मरण करते हो ? कभी उनके दुःख में भागादार बनते हो ? अपने मुख में उन्हें हिम्मतदार बनाते हो ? उनके प्रति कभी आत्मीयता का भाव आता है ? अगर ऐसा नहीं होता तो समझना कि तुम्हारी सेठई और रईसी कम्बे समय तक नहीं टिक सकेगी। तुम्हारी स्वायत्त परायणता ही तुम्हारी श्रीमताई का स्वाहा करने का कारण बनगी। अभी समय है गरीबा, मजदूरों और नौकरों को सधि ला। उनके दुःखों को दूर करने के लिए हृदय में उदारता लाओ। उनकी कमाई का उन्हें अच्छा हिस्सा दो। इससे उन्हें मतोप होगा और उनके सताप से तुम सुखी बन रहेग।

(२८)

व्यापारी का आदेश दूसरों का कष्ट पहुँचा कर अपनी तिज्जोरियाँ भरते रहना नहीं है। गरीबों को खुशना व्यापारी

का बतलाने मही है । जगता के अमान का दूर वगन के लिए व्यापार का प्रयास नही गइ था । एक जगह नही चोज आवश्यकता से अधिक हाती है और दूसरा जगह इतना कम हाती है कि उसका अभाव में जगता का भारी काट भुगतना पडना है । ऐसी स्थिति में व्यापारी एक जगह से दूसरा जगह वस्तुओं पहुँचाकर सब का सुविधा कर देता है और उसी में से अपने निवाह के लिए उचित मुनाफा ले लेता है ।

(२१)

व्यापारी का नाम बालर गुरु से कि वर माकेंट एक प्रकार का भारी है और इस तरीके से खर खमाई करना धोत्र हा नही छोड़ दिया जायगा तो उसकी प्रतिक्रिया उठी हा भयकर हो सकता है । वर माकेंट करने वाले व्यापारी अपने भविष्य को भूल रहे है । समाज में आर्थिक शक्ति का आह्वान कर रहे है । कहना चाहिये कि आज अमान वस पूजापति हा पूजोवा के विरुद्ध वातावरण का निर्माण कर रहे है ।

(१०)

पछी लागे को पहल तुम्हार नाम कितना पसी या आर तुम्हारा क्या हालत था ? अब कितना गुना पसा है ? मगर सतोष नही । चार बाजार अर भा तयार है । बाई भी अनीति और अत्याचार करने से परहज नही । पता नही कि उसका फल कितना बटुक भुगतना पडमा ।

(३)

गराबा के अम तोष को दूर करने का तरीका क्या है यह हमारे शास्त्र हजारों वर्ष पहले ही बतला चुके हैं । शीमत अपना हृदय उदार बनावे, त्यागशील बने, निधनों के प्रति आतिथिक स्नेह रखे समय पर उनकी सहायता करे, कोई भी व्यवहार ऐसा न कर जिससे उन्हें अपना होनता मालम पड़े, सब प्रकार से उन्हें साता पहुँचाने का प्रयत्न करें और धन की हा तरह विद्या बुद्धि और श्रम का महत्त्व समझ तो बिगड़ती हुई परिस्थिति में कुछ मुधारा हो सकता है ।

(३२)

अपराध का पसा अव्यक्तता नामने ही समाप्त हो जायगा कदाचित्त यह गया तो तीसरी पीढ़ी में दिवालिया बना ही दगा । इमानदारी का एक पसा भी मोहर के बराबर है और बड़मानी की मोहर भी पस के बराबर नहीं है ।

(३३)

नीति का एक पसा भी मोहर के बराबर है और अनीति का भंडार भी अनर्थों का भंडार है ।

(३४)

अनीति करके कोई सुख नहीं पा सकता । अनीति द्वारा उपाजन किया हुआ द्रव्य तो खरा ही जाता है, साथ में

जायगी । गरीबा की हाथ में वह आग है जि श्रीमता को बड़ी बड़ी ह्मलिदाँ भी उससे भस्म हो जायगी ।

(१८)

आज आपके पास पहले से पना बड़ा ही है घटा नहीं है । मगर देखना यह है कि आपकी उदारता उमी परिमाण में बड़ी है अथवा नहीं । अगर आपका उदारता नहीं बड़ी तो धन क बढ़ने से आपका क्या हित हुआ ? धन क साथ आपकी ममता बढ़ गई इसका अर्थ यह हुआ कि आपका पाप बड़ गया है । उस धन की सार-मभाव करने की चित्ता बड़ गई आकुलता उठ गई और आरम्भ-समारम्भ बड़ गया । यह सब पाप का ही बड़ना है । ऐसा मवत्ति से आपका कुछ भी हित महा हान कासा है बकि अहित ही है ।

(१९)

तू चाहता है मैं अधिक सम्पत्तिवाला होकर मुखी बन जाऊंगा । परंतु यह तो दगने कि जिनके पास अधिक मवत्ति है व क्या गुना है ? नहीं । व भा तो मुम्मी नहीं है । व भी तेरी ही तरह ताणा की आग में जल रहे हैं । एमी अवस्था में तू कैसे गुना हा जायगा ? गुन का असला साधन तो सत्ताप हा है । अनएव है भज्य । अगर तू वास्तव में ही मुम्मी बनना चाहता है तो संनय धारण कर ।

(१०)

धन भाषणा में धन की तुलना बहुत बाधक होती है । परन्तु अभी यह भा साचने हो कि आगिर इनन धन का क्या करार ? क्या पाव कर धन के बदल बहुमूल्य मोती माना चाहते हो ? अर पाव कर अनाज, थोड़ा सी जगह और और आवश्यक वस्तु तुम्हें चाहिए और उसक करने तुम सुनिया भर की दीनत का हवियान के लिय आवाग पाताप एक कर रह हा ? मोचने क्या नहीं कि यह सब क्या है । अपना वह उत्तम जीवन इस जड और बिनश्वर सम्पत्ति के पछ क्या प्रकारध खा रहे हा ? धन की मर्यादा करना । मर्यादा कर योगता मनाप आ जायगा । सताप आ जायगा ता व्याकुलता मिट जायगी । निराकुलता का अपूर मुग प्राप्त होगा और सब भावना धम की ओर जायगा ।

(११)

तुलना का एक तरह का अग्नि है, जो प्रत्यक्षान्वित के ईंधन में दूधती नहीं रहता जाता है ।

(४)

संपत्ति चित्त में गति का मान नष्ट रहानी व्याकुलता की आम मुलगाती है । एसी संपत्ति के निरुद्ध आत्मा का अहित करते हो ?

(४३)

जिनके जाप-दाँदे गरोब थे, भरपेट रोटिया भी नहीं पात थे, ऐसे लोग लक्ष्मपति होकर भी भगवान का भजन नहीं करते । पृथु गन्ना के लिए चित्तामणि के मदुश मानव-जीवन को बर्बाद कर रहे हैं । कोई जादमी कौया को उड़ाने के लिए हाथका हीरा फक दे ताँ मूल समझा जाता है मगर धन लोलत के लिए जीवन को गँवा देना क्या उससे भी बड़ी मूलना नहीं है ?

(४४)

तुम गहस्थ हो तो मैं नहीं कहता कि तुम पसा मत कमाओ किन्तु इस प्रकार नसिक्ता से विरुद्ध व्यवहार करके मत कमाओ । पसा के लिए अपना धन मत बेचो । पसा जीवन के लिए है, जीवन पसे के लिए नहीं है । धन की तप्या से अध हाकर याय अयाय को मत भूलो । जिस धन के लिए तुम धन की मूल रह हो वह साथ जानेवाला नहीं है । हा धनोपासन के लिए तुम जापाप करोगे वह अवश्य ही तुम्हारे साथ जायगा किन्तु बाँधा हुआ पाप तुम्हें भव-भव में दुःख देगा ।

(४५)

जीवन और धन में से जीवन ही महत्वपूर्ण वस्तु है । धन जीवन के लिए है, जीवन धन के लिए नहीं है । मानो कि जीवन का सुखमय बनाने के लिए गृहस्थ अवस्था में धन की

जम्बरूत होती है पर इसका अर्थ यह तो नहीं है कि तुम धन के लिए अपने मागे जीवन का और समस्त मद गुणों का ही निद्रावर कर दो ।

(१६)

चाहते हो कि हम धन सम्पन्न बन जाय, पुत्र-पौत्र आदि परिवार बाने बने रह सकें प्रचार की सुख-मामया हमें प्राप्त हो, मगर धर्म की उपेक्षा करते हो । तो यह किस हा सकता है ? नीम का रस पीकर मूत्र भीठा करने का इच्छा किस प्रकार सफल हो सकता है ? तुम धर्म का रक्षण और पालन करोगे तो धर्म तुम्हारा रक्षण और पालन करेगा धर्म में ही मर मुखा की प्राप्ति होगा ।

(१७)

धर्म की उपेक्षा करके धन की आराधना करना क्या ही मूर्खतापूर्ण है उस किमी वक्ष के मधुर फल पाने के लिए उसका मूल में पानी न सींच कर पत्तों पर पानी छिटकना ।

(१८)

भाई ! समझ ले तेरे पास धन है और तू चाहे तो उसके द्वारा स्वर्ग भी खरीद सकता है और नरक भी खरीद सकता है दोनों में से क्या चाहता है ? स्वर्ग चाहना है तो धन को छाती से चिपकाये काम नहीं चलेगा । उसे दोनों हाथास खच करना होगा । स्वर्ग का मोल चुकाना होगा । गरीबों को पाने

पड़ेगा। धन के कामों में व्यय करना होगा। यदि नरक सरोदना है तो तिरजोरियों में भर रख, जमीन में गाड़ दे। धन जमीन में गाड़ने के लिए जो गड्ढा बनाता है, समझले कि नरक में जाने का रास्ता बना रहा है।

(४६)

भाइया ! पापी जीव मर जायगा लाया-करोड़ों की सम्पत्ति छोड़ जायगा, पर तु उस सम्पत्ति के उत्पादन में जो पाप किए हैं उन्हें साथ अवश्य ले जायगा। उन पापों का फल भागने के लिए वह नरक कूड़े में गिरगा वहाँ सारी अकड़ निराल जायगी।

(४७)

जिस धन से दया जाति समाज और धर्म का भला न हुआ, वह धन बुरा है। ऐसे धनवान का जीवन भी बुरा है। वह उस धन का मालिक नहीं गुलाम है। उसकी जिदगी किसी के काम नहीं आती और उसका धन भी किसी के काम नहीं आया। तब वह किस मतलब का है ?

(४८)

वह बड़ा आदमी किस काम का जो हर्ष के अवसर पर स्वयं ही खान्पा लेता है। स्वयं ही बिगोद कर लेता है। और मौज उड़ा लेता है। सच्चा बड़ा आदमी यही है जो

अपने हृय मे दूसरा का सम्मिलित करता है । जा मुख के समय मे दीन-दुस्त्रियों का स्मरण करता है ।

(३२)

आपका बढप्पन किस काम का है ? घाडे की पूछबडी होती है पर वह अपने ही मक्कियाँ उडाती है । अगर आपने अपने पढीसियों का भला नही किया ता आपका बढप्पन का क्या महत्व है ? जंगल के पेड की तरह पदा हुए जिन्दार ह और नष्ट हो गये, ता किस काम के ? आपका जीवन का क्या लाभ लिया ?

(३३)

अगर इस जन्म मे लक्ष्मी का सदुपयोग न करगा ता फिर क्या करगा ? यह लक्ष्मी या ता तेरे जाते जी ही तुझ छाडकर चली जायगी अथवा किसी समय तू इस छोडकर जायगा । जब यह निश्चित है, और इसमें तनिक भी सदेह नही है ता फिर क्या सोच-विचार करता ह ।

(३४)

धन का भंडार भर लेने से भी धन्य नही होगा, प्रतिष्ठा और परिवार बना लेने मे भी जावर सफल नही बनगा । सुकून करने मे ही जीवन की साधकता ह ।

(१२)

धन प्राप्त करने की मायकता इसी में है कि वह परोपकार के काम में आये। जो धन परोपकार के काम में नहीं आता वह पुण्य का कारण न बनकर पाप का ही कारण बनता है। उससे आत्मा का पतन होता है।

(१६)

धनवानों का अनुचित आदर मिलने के कारण समाज में धन की पूजा बढ़ती जाती है और गुणा की प्रतिष्ठा घटती जाती है।

(१७)

धन या तो बही धा और निधन हो गया तो भी वही है। उसके मनुष्यत्व में कुछ अन्तर नहीं पड़ गया है। फिर क्या लोग की दृष्टि में इतना परिवर्तन हो जाता है ? इससे तो यही प्रकट होता है कि वास्तव में यह भौतिक दुनिया मनुष्य का बल नहीं करती। मानवीय सदगुणों का मूल्य नहीं जानती इसे एत ही वस्तु का मूल्य मालूम है और वह धन है और स्वाध का मूल्य है। जब देखता है कि इनसे कोई स्वाध सिद्ध न होगा तो एकदम अलिख बदल लेता है। ऐसे स्वाधमय ससार पर जिनका अनुराग है वह क्या कहा जाय।

(४८)

भाइया ! मनुष्य का अमल मूल्य पग से नहीं है ।
रिगो व इत्यदित्य का पग म मन दमा । यह देखा कि उमम
बितना उदारता है बितना दयावृता है बितनी मरलता है
और बितनी क्षमा है ? जिसका जीवन में गमभावकी जागति
जितना अधिक है, वह उतना ही अधिक उच्चकोटि का
व्यक्ति है ।

(४९)

लोग पग का बितना आदर करते हैं उनका अगर
मानस्य सन्तुष्टों का आदर करें तो ममार स्वयं बन जाय ।

(५०)

गमति व प्रभाव म कोई द्रष्टा नहीं होता किन्तु
जिसकी तन्हा उठा हुई है, वही वास्तव म द्रष्टा है भल ही
वह करोडपति क्या न हो ?

(५१)

जिम बभर व निमनुष्य बनना गिर जाता है, जिस
बभर व पीछे मनुष्य मनुष्यता की भा गैवा बठता है और
गमम बन जाता है उस बभर को प्रिवकार ! लाख बार
प्रिवकार है !

(५२)

जिमन धम रूपी धन का सचय किया है, वही करोड-
पति है । उसके ममान कोई करोडपति नहीं है । आग धन
साथ नहीं चला धम ही चलेगा ।

(६३)

धनी जिस धन से अपनी प्रतिष्ठा समझता है जिसमें अपना गौरव मानता है सम्पत्तिर लाग उससे जीवन का अधः पतन दायन है ।

(६४)

अवान मनुष्य जिसे अपने जीवन का सर्वम्य सम्पत्ति है जिस सम्पत्ति के लिए धर्म और नीति का भी त्याग करता सबकुछ नहीं करता, यहाँ तक कि मरने का भी तयार हो जाता है जानी उसी सम्पत्ति का तुच्छ और निम्मार समझन है । ऐसी सम्पत्ति का जो भी मूल्य है वह केवल मिथ्या रूपना के ही क्षय में है । वास्तविकता के क्षय में उसकी कोई भीमन नहीं है ।

(६५)

यदि आपकी मानसिक स्थिति ऐसी उंची है गई है कि आप धन के लिए धर्म का नहीं त्याग करते और धन आपको धूल के समान प्रतीत होने लगा है तो आप सम्पूर्णदृष्टि हैं, शुद्ध पक्षी हैं ।

(६६)

गरीब अगर अपना गराजो में सत्पाप मानकर चलता है और जिस किमी उपाय से धनवान् बनने की लातता नहीं रखता तो वह धनवान् से तनिक भी कम भाग्यशाली नहीं है ।

(६३)

प्राचीन काल में याग्य का महत्त्व होता था और
अन का गौरव होता है ' देव का यह धन क्या मायाय
नवन है ?

(६४)

आज उन के सम्बन्ध में प्रतिपत्ति होने के कारण और
धन का है। प्रतिपत्ति मित्रता देवकर लोभ विद्या गाने जन
सबसे पर आ धन का है महत्त्व है। क्या का पिता
कहा है कि मत्त स्वर्गति जेहाई मित्र और मन्त्र का पिता
न था है कि मत्त काई लमा सम्बन्धी मित्रे या धन न मत्त
पर भर है ? इस तरह दोनों का उद्देश्य धन पर ही होता है।
इसमें भ्रमारे गराया का विवेक पर्याप्त होती है इस और
विमो का स्थान उहा जाता। योग्य न योग्य लक्ष्य बुद्धि
विम्व है और धनवान उह दार्ष्टिक्य का धन बढ़ाव का
लगत है ? जिस दंग का और जिस ज्ञान का लमा उगा है
उमर। उ याव कम ज्ञाना ?

(६५)

माता पिता का पालना चाहिये कि एक मात्र गत हो
जिया के जीवन का मन्त्र और उगा गती का मन्त्र।
जिना सुमन्त्रार धार्मिकता और नित्यता आदि मन्त्र
जिनम विद्यमान है। विवेकशाली माता पिता उगा धर का
पमद करत हैं। वे यह ध्यान में रखत हैं कि हम धन के माध

अपनी क्या का विवाह नहीं करना है, बल्कि मनुष्य के साथ
 करना है और इसी लिये वे धन से किसी को योग्य नहीं
 समझ लेते, बल्कि सन्तुष्टा में ही योग्यता की जाँच करते
 हैं ।

(७०)

राज से बट को जो धन मिलता है उसकी क्या कीमत
 है ? वह धन तो उल्टा अनर्थ का कारण होता है । वह ज्यादा
 हो गया और धर्म धन न हुआ तो मनुष्य क्या करेगा । मरने
 में पड़ा रहेगा और ब्रह्म छोड़ देगा और घण्टे घमगा । इस
 प्रकार पौदासिक धन आत्मा को नरक में ले जाने का ही
 साधन है । इसका निपरीन है सन्तुष्टि द्वारा प्रदान किया
 हुआ धर्म धन जो हम लाख को भी मुधारता है और परनाम
 को भी मुधारता है ।

(७१)

मादयो ! मन का भंडार या भरी हुई तिजारी
 छाड़ जानो तुम स्पर्णाय नहीं उतांग । उस धन का पाव
 तुम्हारे उत्तराधिकारी अगर घनाचारी हो गए तो लोग तुम
 भा कामग । दगा प्रकार सात मजिहा महल बना लगे स
 तुम गणना के योग्य नहीं बन सकोगे । भूकम्प का एक ही धक
 उस भूमिशायी बना लगे । नहीं तो बाल उसे घरती में मि
 दगा । पुत्र-पौत्रादि का बड़ा परिवार भी तुम्हारा जी
 माथन नहीं बना सकता । ससार की कोई वस्तु तुम्ह

सच्चा स्मारक नहीं बन सकती। अगर तुम चाहते हो कि मसार तुम्हारा नाम ले, तुम स्मरणीय समय जाओ ता गुद्ध चेतना प्राप्त करो। शुद्ध चेतना अर्थात् विवेक या सम्यग्गमन पाकर तुम्हारा शक्ति तुम्हें समीचीन पथ की ओर न जायगी और आविर्गत स्थान पर पत्तन जाओग।

(७२)

रेंडट की धड़ियाँ पानी में भर जाना हैं और फिर थोड़ी-थोड़ी दर में हा खाली हो जाता हैं। खाली होकर वह फिर भर जाती है। इस प्रकार भरन और खाली होन का क्रम चालू ही रहता है। धन का भी यही दगा है। वह धमा जाता है और कभी खला भी जाता है खला जाता है तो आभा जाता है। आज जो त्रिद्वह वह बल हा मपत्ति खाली बन सकता है और आज जा सम्पत्तिगानी है वही कान-दान के लिए मुह ताज हो सकता है। अतएव धनवाना का कतय है कि जब उनका दगा अनुकूल हो तब व धन का दुरुपयोग न कर। गरीबों का सताए नहीं, बल्कि अपने धन में उनकी सहायता करें।

(७३)

वाई भाला मनुष्य आपका ऊपर विश्वास करता है। आप चाहे तो सहज ही उसे ठग सकते हैं। मगर आप उस ठगना उचित नहीं समझते और सोचते हैं कि— 'अर अर्थात्' क्या मोना-चाँदी आदि सम्पत्ति तुम्हें

ज्ञाता है / इस दुनियाँ की चीजें तो इसी दुनियाँ में रह जायगा फटो कोटो में साथ जाने वाली नहीं है । फिर क्या ही इस सम्पत्ति के लिए क्या पाप कम करता है ? क्यों अपनी आत्मा को पाप से क्लृप्त बनाता है ? जब पाप कर्मों का उदय होगा तब पाप से उपाजित की हुई सम्पत्ति मुख्य प्रज्ञान नहीं कर सकेगा वह उल्टा दुःख का ही कारण बनेगी ।' ऐसा मोचन वाला अपना दया करना ३ ।

(७४)

पुण्य का उपाजन करोगे तो आगामी जीवन में भी मुख्य प्राप्ति । छत्र कपट ■ धन कमाया तो पाप ही पल्ल पड़ेगा । धन साथ नहीं जायगा, पाप तब पड़ जायगा । अतः निरुपट धन मरल बना ।

(७५)

धन सम्पत्ति का साथ वे जान का एक ही उपाय है और यह यह कि उनका ज्ञान कर दो, उसे परोपकार में लगाया रखाने करना ।

(७६)

वश्य लाग अपने धन की रक्षा करने में बहुत दुःख हान हैं । मगर खेद है कि वे यह नहीं समझते कि उनका वास्तविक धन क्या है ? रुपया पसा, महल भ्रान्ति को तुमने धन समझा है परन्तु वह तम्हारा सच्चा धन नहीं है । वह

पौद्गलिक धन मुम चैनन का धन कम हो सकता है / तुम्हारा प्रमत्ता इन चरित्र है । अतः तुम्हें चरित्र रूपा धन का रक्षा करनी चाहिये ।

(७३)

भादरा ! कर्ष भी व्यक्ति लागू जोर बनाडा की गपति बकटठा कर सकता है । किंतु पुण्य के बिना वह भाग नहीं सकता । धन में इतना अड्डा बड़ा कर धन है । वह न स्वयं जाता है और न पता आति को जान पता है । इसी प्रकार कपण जन न खुद को मकता है और न दूसरा का धन दता है । वह धन का पहरेदार मात्र है । उसकी रख-वानी करना ही उसका काम है ।

(७४)

कुछ लोग माना जपते हैं और उमम भावना करते हैं भगवान् सार गांव के ग्राहक मरी हा दुकान पर आ जाएं । भगवान् ग्राहक का घर कर तेरे घर जाएंगे । तू भगवान् का अपना नीतर समझ रक्का है । अरे लोभा मत्र ग्राहक तरी दुकान पर आ जाएंगे तो दूसरा के बाल-बच्चे क्या लाएंगे ?

(७५)

नमो प्राप्त करने के लिए पुण्य का आवश्यकता है । पुण्य का उपायन भगवान् की स्मृति और भक्ति करने में होता

है। जो भगवान की भक्ति करेगा सम्पदा उसकी दामो बन जाएगी। जग परछाई में विमुख होकर आप चलते हैं तो परछाई आपका पीछा करता है, उसी प्रकार आप लक्ष्मी से विमुख होकर भगवद् भक्ति करोगे तो लक्ष्मी आपका पीछा करेगी। हमको बिहड़ जैसे परछाई का पकड़ने के लिए दोड़ना पाला यकिन कभी अपना परछाई का नहीं पा सकता, उसी प्रकार लक्ष्मी-सम्पदा करने वाला और उसके पीछे पीछे मारा-मारा फिरने वाला पुरुष लक्ष्मी नहीं पा सकता।

(८०)

आमिर सभी का एक दिन मरना है फिर धर्मक लिए यह अनीति क्या की जानी चाहिए ?

(८१)

आत्मा के स्वाभाविक गुण ज्ञान दर्शन आदि भार लक्ष्मी आर्तिक सम्पत्ति है। वह मदव आत्मा में रहता है। उसे बाहर से लाने की आवश्यकता नहीं पड़ती। उसे प्राप्त करने के लिए सिर्फ इनना ही करना पड़ता है कि आत्मा पर पड़े पदों का प्रयत्न करके हटा दिया जाय। यह सम्पत्ति एकान्त सुख देनेवाली है और मदव भुग्य देनेवाली है। परलोक में भी वह साथ देती है। वह धनन और अन्नय आनन्द प्रदान करने वाला है।



- विषय-भोग :-

(१)

मगार से जितन ची धनबे हो रहे हैं, उन सब के मूल में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में, स्पष्ट या अस्पष्ट रूप में भोगों की अभिलाषा ही है। सामाजिक भोग ही सब धनपों की शक्ति है।

(२)

विषय भोग और उनके माश्रफों की जाकीर्नी ही अमल में दुख है और उस जाकीर्नी का त्याग भुक्त है। ज्यो-ज्या जीवन निवर्तितमय धनता जायगा त्यो-त्या भुक्त की पद्धि हाथी। क्षान्ति निगकूलतर में है, ध्याकूलता में नहीं है।

(३)

कुत्ता समझता है कि वह जिस हड्डी का चूस रहा है उसमें से खून आ रहा है। उस बेचारे का क्या पता कि जिस खून का वह हड्डी में समझ रहा है वह तो उसका अपना ही है ? इसी भाँति विषयासक्त जीव भोगी में मुख की कल्पना करता है, जबकि मुख आत्मा में ही है। मूर्ख व मूढ़ में पटरस भोजन दाल दो क्या वह उसका एसाम्बादन करके गुन प्राप्त कर सकता ? कदापि नहीं।

(५)

बसल जान यह है कि अधिकांश लोग वास्तविक सुख के रूप का ही नहीं समझते हैं । जमे कूता प्राप्त हड्डों का चावता है । हड्डा का चवान से उठक मसूढ़ों में से अधिर निकलना है और वह उन मर्मों को हड्डों में से निकलने वाला समझ कर चाटना और जान दे मनाता है । और वह यह समझता है कि यह स्वाद हड्डों में से आ रहा है । इसी प्रकार अज्ञानी जीव समझ रहे हैं कि सुख भोग में है । परन्तु उनकी धारणा मिथ्या है सुख पुद्गल का गुण ही नहीं है । वह तो आत्मा का गुण है और आत्मा में ही रहता है । आत्मा के सुख गुण के विचार का सुखभास का लोभ पुद्गल जनित सुख समझते हैं

(६)

भाइयो ! धीरों में गुजली चलने पर मनुष्य गुजाव लेता है और कोई मनाई करता है तो भी नहीं मानता । उस समय गुजावने में ही उसे सुख मिलता है । किन्तु बाद में जब जलन होती है तो पछताता है । इसी प्रकार यह भाग छोड़ी दूर भाग दले हैं किन्तु बाद में वृत्ति तरह पछतावा पड़ता है ।

(७)

बलाकद में सगिया डाल दिया गया ही तो खानेवाले का पहल तो जानद आता है किन्तु बाधा ही दूर बाद सारे

शरीर में ऐंठन आरम्भ होता है और प्राणा में हाथ धोना पड़ता है । यही बात इन्द्रियो के भावों के सम्प्रथ में है ।

(३)

भोगों में उतना ही मुर है जितना तलवार की धार पर लगे हुए गह्वर की जीभ में चाटने में होता है । भण भण मिठास मालूम होती है परन्तु जीभ बटने के कारण सम्यक् ममदा तक कुछ उठाना पड़ता है । बाय बायन से भी इस तरह से कुछ ही कुछ जान है ।

(८)

विष और विषया में अंतर नहीं तो यही कि विष एक बार मारता है और विषय घनेक बार मारते हैं । कामभोगों की अधिक विषाक्तता प्रकट करने के लिए गाम्भीर्य कहते हैं कि काम सप के समान है । जिस मर्प भयकर होता है और उससे दूर रहने में ही बचाव है इसी प्रकार विषय भी आत्मा के लिए भयकर है और उनसे दूर रहने में ही बचाव है ।

(९)

जैसे मन भर ना पत्थर गन्ध में बांधकर डुबकी लगाते याता पुष्प तल भाग में जाकर अपने प्राण गँवाता है, उसी प्रकार विषय भागों की मठरी अपने सिर पर बाँधने वाला मनुष्य पाताल लोक की ओर ही प्रयाण करता है ।

(१०)

यह जीव भागी को नहीं भोगता है परन्तु भोग ही जीव का भोग लेता है । भोगों के लिए अपना जीवन निछावर करने वाले भोग नहीं भोगते, वास्तव में भाग ही उसके जीवन को भोगकर समाप्त कर देते हैं । जीव सोचता है कि मैं पाँच वर्ष में हजारपति से सस्रपति बन गया मगर धन कहता है मैंने इसका अनमोल जीवन के पाँच वर्ष खत्म कर दिये ।

(११)

ससार में जितने भी सयोग हैं, वे सब दुःख उत्पन्न करने वाले हैं । पाँच से समय का ससार का सुख बहुत लम्बे समय तक दुःख देता है और वह सुख भी दुःखों से मिश्रित है, जैसे जहर मिला हुआ अमृत । ससार के सुख को शानी जन इसी लिए सुख नहीं मानते ।

(१२)

विषय भोगों से मिलने वाला सुख वास्तव में सुख नहीं सुखाभास है । सच्चा सुख तो तृप्ति में है और विषयभोगों का संयथा त्याग करके एकाग्र निराकुल अवस्था में ही तृप्ति हो सकती है । अनर्थ भोगजन्य सुख को सुख समझना बोरान्ध्र है, दुःखों को निमग्न करना है ।

(१३)

जीव का स्वरूप अनन्त आनन्द है । मगर जीव को अपने स्वरूप का वास्तविक बोध नहीं है । अतएव वह विषय

जय आनन्द को ही अपना ध्येय मान लेना है और उसी का प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील रहता है। वास्तव में विषय सुख, सुख नहीं सुखाभास है। यह सुख मरीचा प्रतीत होता है। मोही जीव इसी सुखाभास के प्रलाभन में जँग कर अपने जीवन को यूँया मेंबा देता है।

(१४)

भाइयो ! हमारे के यह सब सुख, दुःख के जनक हैं। जो सुख दुःख के जनक हो वे वास्तव में दुःख रूप ही हैं। जितने भी इन्द्रियो के विषय हैं सब का परिणाम एक मात्र दुःख है।

(१५)

जो जीव विषय भोगों में आसक्त होकर भविष्य की परलोक की उपक्षा करत है वह भी मृत्यु के समय और पश्चात् घोर सकट में पड़ते हैं।

(१६)

यह भोग रोग के भण्डार हैं। चेतना को मूढ़ बना देने वाले, आत्मा का पतित बनाने वाले जीव को अभिशापमय बना देने वाले और समस्त आपदाओं का खाने वाले हैं। भोगों में आसक्त हुआ जीव अपने कर्तव्य को भूल जाता है। उसका धिवेष नष्ट हो जाता है। वह अपनी आत्मा को ओर शक्ति कर भी नहीं देय सक्ता।

भोग चेतना को जड़वत बना दत्त है । भागो का संयोग भी दुस्वप्नायी है और उनका वियोग होने पर भी शाव और पदचात्ताप होना है । भोगों की उदीत भयानक व्याधियाँ चेट जाती है । विद्वान्स न होतो अस्पताल में जाकर पूछ आओ । क्या कितने ही लोग भोग के पलम्बरूप नरक-सी यात्रणाएँ भोगते हैं । कई लोग प्रकट रूप से कुत्त बह नहीं सकते मगर पका न म बट कर राते हैं ।

(१८)

आग में घी डाला जायगा तो वह गालत रही होगी । उसकी ज्वालाएँ अधिकारधिक प्रचण्ड ही होती जायगी इसी प्रकार भोग भागन से अतःकरण में तपित नहीं हो सकती, शांति नहीं हो सकती बल्कि अशांति की हो बुद्धि होगी । किन्तु शांति पान की इच्छा से अशांति की राह पर क्यों चलना चाहिए ? धूप से घबरा कर आग की लपटा में कूटना अगर मूर्खता है तो सच्चे सुख का प्राप्त करन के लिए भोगों का भाग पर चेतना भी मूर्खता ही है ।

(१९)

भोग का स्वभाव ही अतपित अमनीय बढाना है अनप्य उससे सब्र बस आ सकते हैं । कोई मोच कि मैं जब सम्राट या बादशाह बन जाऊंगा तो सब भोग-भोग कर तपित सपा

दित कर लूंगा किन्तु अर भाते जीव वात्साह क दिठ स ता
 पूछ देख कि उमका क्या हाल है । उस मन्तुष्टि मिल सका है
 या नहीं ?

(२०)

समाज का ऐसा कौन-सा पृष्ठभूमि है जिसका उपभोग
 नून नहीं किया है ? विश्व के कण-कण को अनन्त-अनन्त बार
 अनन्त-अनन्त रूप में नूने भोग लिया है । अब क्या क्षय रह
 गया भोगन का ? यदि अब तक सुखे तपि नहीं हुई तो क्या
 अक्षय जीवन में भागन से तपि हा जायगी ? रजनीनी
 जीव । अपने मोह का त्याग कर । क्या मन का नचाया नाचता
 है ? क्या इन्द्रियो का गलाम बन कर अपने भविष्य को सकट-
 भय बनाता है ? यह विषय क्षण भर विवृत भान द देंगे तो
 चिरकाल पर्यन्त घोर यातनाओं के कारण बन जाएँगे ।

(२१)

भाग्यभागो में सुख हाता तो विषयगील पुरुष इनका
 त्याग करके एकांत वनवास के कटो को क्या स्वेच्छा पूर्वक
 सहन करत ? वस्तुतः किमी भी पौदालिक पदार्थ में सुख नहीं
 है और न वह आत्मा का सुखी बना सकता है, क्योंकि सुख
 आत्मा का ही स्वाभाविक धर्म है । जब आत्मा पर पदार्थों से
 विमुख होकर अपनी ओर उमुख होता है और अपने ही सहज
 स्वरूप में रमण करता है तब आत्मा का सुख
 हो जाता है ।

(-)

आज किसी अचरे कमर में बंद कर दिया जाय और आज बंद हो तो पाच मिनिट भी नहीं रहा जाता अगर नौ घास तक गर्भावाम कमे किया ? आज उन सब दुगो को मूल गय हो इसी से विषय वासना म फंस कर अपने जीवन म सफल समझ रह हो परन्तु याद रखना यह पुन पुन गभ उत्पन्न होने का माग ह । जिस रास्ते से गय हो यह बहुत दुःखा से परिपूर्ण ह । उसी पर क्या फिर जाते हैं ?

(२३)

भाइयो ! विषय वासना का दुःख थोडा मत समझो इसके पीछे आज हजारो लाखो नही करोडो जीवन बर्बाद हो रहे ह । बड़-बड़ प्रतिभाशाली लोग इस चक्कर में पड़कर मूल बन जाते ह । कितने ही उदीयमान नगरो का विषय वासना न उन्ति होन से पहले ही ज त कर दिया है । विषय वासना यह पिशाचिनी है कि न जान किनको का अपना भक्ष्य बना चुकी ह ।

(४)

विषयों म हुनाहन्त विष भरा ह । ज्यादा सिनेमा देखना तो आँखा की रोशनी बंद हो जायगी और ज्यादा मनोरं गंध सूंघना तो नाक बंद हो जायगी । ज्यादा मीठा खाएगा तो जीभारियाँ घर आएगी । अधिक स्पश मुख को

मे आत्मा को नहीं प्राप्त हो रहा हूँ । समारी जीव इनका तपणा में पड़ कर अपने ज्योतिमय अनंत प्रकाशमय स्वरूप का भूल गया ।

(७)

जबकि आत्मा अपने गूढ़ स्वभाव में अनमिश्र है, तभी तब वह बाह्य पदार्थों में मूल्य समझता है । जब आत्मा के अमीम स्वाभाविक मुख का अक्षय स्वभाव उसे नजर आता है तो बाह्य मूल्य उस उपहान्मय्यद जान पड़ता है । उसे भोगना उसे नादान छावरो का खेत सा जान पड़ता है ।

(८)

राग और द्वेष रूपी विकारा को जीतना ही साधना है । जितने जितन अशा में इन विकारों पर विजय प्राप्त होती जाती है, उतने ही उतने अशा में साधना पकती जाती है, और जब पूरी तरह पक जाती है अर्थात् पूर्णता पर पहुँच जाती है तो पूर्ण समभाव प्रकाशित हो जाता है ।

(९)

मनुष्य जब आत्मा के परम चिन्मय स्वरूपका पहचान लेता है तब उसे स्वभावतः विषया से विरक्ति हो जाती है । अतएव विषय वासना से वचन के लिए आ मनान प्राप्त करना ही सच्चा उपाय है । निरन्तर भावना और अभ्यास से ही विषया का वासना नष्ट की जा सकता है ।

(३०)

अब बाईं मनुष्य जान लेता है कि यह विषयपर मप है ता क्या उसमें स्वतः भ्रमता है ? उससे समाप भी राधा रह सबता है ? कदापि नहीं । मप का भ्रम हान ही वह दूर भाग गया होता है । यही मच्छा जानना है । इसी प्रकार जिमने समार के भाषाप्रभागों का भ्रमला स्वरूप समझ लिया है वह जिस प्रकार उन्मत्त रह कर भ्रमता है ।

(३१)

भोगलानुप नाग बाट में बिताता ही पचताप कयो ? वरें, अपने कर्मों का फल भोगते बिना छुटकारा नही पा सगे अतएव ह मनुष्य । तूने अथ भद्र प्राणिया से विनिष्ट बुद्धि पाई ह तूने विवेक भी प्राप्त ह तू अपने भविष्य के विषय में विचार कर । माच समझ कर कलम उठा । फूव-फूव कर चर । आँखें रहत जघा कयो बनता ह ? जान बूझ कर क्या भाग में पगता ह ?

(३२)

भाइया ! समार में बधन तो अनेक ह किन्तु विषय भाग के बधन के समान और कोई बधन नहीं ह । जिमने इस बधन का तोड़ कर फव दिया ह, समयता उसने सभी बधनों का तोड़ करने की तयारी कर ली ह । अथ प्रयत्न से मुक्ति पाना उसके लिए सरल हो जाता ह । अतएव अगर आत्मा का परम व्यापक चाहते हो ता, विषय-वामना का जड़ को उग्राहकर फवने का प्रयत्न कर ।

(१३)

भोग का रोग बड़ा व्यापक है । इसमें उड़ती चिड़ियाँ भी फँस जाती हैं । अतएव भोग के रोग से बचने के लिये सदा प्रयत्नशील रहना चाहिये और कभी चित्त का मूढ़ नहीं होने देना चाहिये ।

(१४)

पापा में बचन का सब से उत्तम उपाय अपनी इन्द्रियों पर काबू करना है । जैसे बछुआ अपने अंगों और उपांगों को संशुचित कर लेता है ना उसक ऊपर शत्रु का प्रहार सफल नहीं होता इसी प्रकार जो मनुष्य अपनी इन्द्रियों का बग म कर लेता है, उस पर पापों का जार नहीं चमका । जो बछुआ की भाँति इन्द्रियों को गोपन करके रखता है, अतःकरण में बुरे विचार नहीं आने देता और दूसरा का दिल दुखाने वाली भाषा का भी प्रयोग नहीं करता वह आत्मा को भोग में ले जायगा ।

(१५)

इन्द्रिया पर काबू रखने का अर्थ यह नहीं है कि कानों से सुनना बन्द कर लो, आँखों से देखना बन्द कर दो आँसें फोड़ लो या उन पर पट्टी बांधे फिरो, नाक से सूँघना बन्द कर दो, जीभ से स्वाद लेना छोड़ दो और स्पर्शान्द्रिय से किसी भी चीज को छूना त्याग दो । नहीं, शास्त्रकारों का आशय यह

यही है। तमा करने से जीवा-विवर्धन, आत्मकता, अद्विष्टों पर काबू रखने का अर्थ यह है कि मनोप्रेम, प्रयत्न, शक्ति, समर्थता आने वाले पक्षों पर शक्ति, शक्ति, शक्ति और धर्मनाम अर्थात् अद्विष्ट समझा जाना वस्तुओं पर दृष्टि भाव धारण मत करो।

(24)

विषय परिचयाग का अर्थ यह नहीं है कि आप बिना
भा वस्तु का स्पर्श न कर किमी चीज को जानें न हों न
नाक से हवा को स्वाद से पदार्थों को और कान से
शब्दों को नहीं सुनें । विषयों का परिचयाग का अर्थ यह है
कि मनुष्य जीव अमनुष्य विषयों से सम्पर्क कर लिया जाय ।
अथवा अविद्या से सम्पर्क से रहित करे और भव चक्र
हृदयों में निमित्त भाव धारण न करना यही विषय प्रमाण
रचाना का अर्थ है ।

(3)

नन्ना म आया हुआ वग राव का रूप धारण करके
 घात घात उत्पन्न कर देता है । मगर बनुर न्यायिक चीज
 बना कर और तहरे निजाल कर जब उस वग का पात कर
 दत्त है या दूगरी तरफ माह देन है ता यही लाभदायक बन
 जाता है । यहा बान योरा व प्रजय वग व विजय ता भा
 ममता । विवकान् व्यस्ति योवन व प्रवन वेग
 देने हैं । भागावभावा की दिशा से हटा कर उस

की जिज्ञासु में वे जाते हैं । तब वह अकल्याण व घटने लोकोत्तर
कल्याण का कारण बन जाता है ।

(३८)

पाद गगनो रत्नी का लड्डू बना कर दीवार पर मारोने लो
रत्नी बिपक्वी नहीं, कि तु चिरनो मिट्टी का लड्डू वही बिपक्व
कर रत्न जाएगा । तुम्हारे चित्त में भागो की स्निग्धता होगी
ता बीरामी क चक्कर में पड़ रहाग नीर भागो के प्रति हृदय
वर्ति होगी तो चक्कर में पड़ो पड़ो ।

(३९)

जानी पुरणो को पौण्ड्रिक मुख फोक और निस्तार
प्रतीत होत हैं । उनका गति उनको भोगने की नहीं होती ।
यद्यपि वह महाम्थावास में रहता है और सामारिक काम भी
करता है फिर भी उनमें निमग्न नहीं होता लिप्त नहीं होता
जल में कमल की भाँति अलिप्त-रह कर ही यह दुनियादारी
का व्यवहार करता है ।

(४०)

इन्द्रियो के विषय इन्द्र के समान आत्मा का प्रीत दास
बनाने वाला है ।

(४१)

मसग से वासना की वद्धि हानी है ।

(१०)

वासनाएँ बढ़ान से बढ़ती और घटाने से घटती है । भाग भागन में तृप्ति हो जायगी, यह कल्पना विपरीत है । भोग भोगन में अनन्ति ही बढ़ना है—कभी तृप्ति नहीं होती । तृप्ति होती तो कभी की हा गई हानी । आत जन्मों में जा तृप्ति नहीं हुई वह अब कुछ वर्षों में कम हो जायगी ?

(४३)

इन्द्रिय विजय का माय सम्पत्ति का माय है । अद्यान यदि तू अपनी इन्द्रिया पर विजय प्राप्त कर लेता है तो तुझ इसी लोक में क्षान्ति मत्तोष और निराकुलता रूप परम सम्पत्ति प्राप्त होता है और परलोक में दिव्य सुख की प्राप्ति होगी ।

(४४)

ससार का समस्या विषय जनित सुख परावलम्बी, तुच्छ जीर अनुपादय है । माय ही क्षणिक भा है । म्वेच्छा—पूषक इसका परित्याग करके परमात्मा का भजन करने से बचना गीचर आनन्द प्राप्त होता है । उसका फलस्वरूप मोक्ष का अमर सुख मिलता है ।

(४५)

लोहे के ऊपर चितना ही वजनदार पथर पटका, लोहा फलता नहीं लेकिन उसी को आग में रखा दिया

कर पानी-पानी हो जाता है इसा प्रकार मजबूत से मजबूत मन वाले भी खराब निमित्त मिटने पर खराब हो जाते हैं। अतएव जो मन का निग्रह करना चाहते हैं, उन्हें प्रतिकूल मयेगा से सदैव बचत रहना चाहिए।

(५)

लाग प्रेम व नाम पर बहुत भ्रम में है। वे समझते हैं कि विषय वासना ही प्रेम है। किसी भी ऐसी-गरी को घर में डाल लेते हैं कि प्रेम हो गया। परन्तु कहीं प्रेम की सात्विकता और पवित्रता और कहीं वासना की गंदगी। शूद्ध सहज एवं मात्स्यिक स्नाह अगर सुधा व समान है तो विषयानुराग विष व समान है। ज्ञानो में प्रकाश और अधिकार व समान अंतर है।

(४७)

जब तक बुद्धिधा है तब तक पूर्ण अस्म-निष्ठा नहीं हो सकती। मतार व दुःख भी चाहो और मान्य का कामना भी करा तो यह नहीं बन सकता।

(५८)

कामना मात्र त्याज्य है। चाहे वह इहलौकिक हो ध्रुव परलौकिक। कामना वह विष है जो धमचरण के अमृत को भी विषक बना देता है। अतएव उसका त्याग करना अत्यंत आवश्यक है।



-: कर्म-फल :-

(१)

कामण खगणा के पुदगल द्रव्य कम कहलात है और राग-रूप आदि जीव के कपाय-भाव भाव कम कहलात हैं । उन दोना में काय-धारण भाव है । द्रव्य कम जय उदय में आते हैं तो उनक निमित्त से राग-रूप आदि भाव कम उत्पन्न हात है और जय भाव कम उत्पन्न हात है तो तय कामण खगणा के पुदगल (द्रव्य कम) आमा के साथ बध जाते है । अविच्छिन्न रूप से यह प्रवाह चलता आ रहा है ।

(२)

द्रव्य कमा से भाव कर्मों की उत्पत्ति हाती है और भाव कर्मा से द्रव्य कम बघत है । जस मुर्गी से अडा हाता है और अडा से मुर्गी होती है अवधा बीज से बदा और बदा से बीज उत्पन्न है उसी प्रकार द्रव्य कम और भाव कम में भी परस्पर काम-कारण भाव है ।

(३)

ममान माघन हाने पर भी किमा का मफलता और विगी का घसफनता मित्रती है यार्द लाभ और घोई हानि

उठाता है। इन सब का कारण क्या है ? बाहर से तो सब एक से दिखाई देते हैं फिर भी बाय में भिन्नता है तो कोई अदृश्य कारण होना चाहिये। वह अदृश्य कारण पूर्वोपाजित कम ही है। आत्मा पुनर्जन्म न धारण करता हो तो पूर्वोपाजित कर्म कस्त फल दे सकने है ?

(४)

बीमार कहता है घमूक औषध का सेवन करने से स्वर चला गया कि मुझे औषध ने भीतर जानकर किस प्रकार तब स्वर से सड़ाई का और क्या काम किया यह बात दुनियाँ को मालूम नहीं होती। फिर भी वह यह काम करती ही है। इसी प्रकार मनुष्य या अन्य कोई भी प्राणी जब पाप कम करता है तो यह नहीं मालूम होता कि पाप कम किस प्रकार आत्मा के स्वाभाविक गुणों का अन्वेषण करत है ? वह यह भी नहीं जान पाता कि कब किसने कर्मों का अन्ध हा गया है, पर तु कम औषध की भाँति धीरे-धीरे आप बाय में त है। तुम्हें चाहूँ, दिन भर के अपने विचारों का पता न लगा सको मगर कर्मों को सब पता है। तुम जाना या न जानो कम छो लेखा लेंगे और राई-राई का लेखा लग।

(५)

कई लोग कहते हैं परलोक दुकासला है। हम परलोक नहीं मानते। मैं ऐसे लोगों से कहना चाहता हूँ कि तुम्हारा दिल में जो यह विचार उभर रहा है सो प्रथम पाप

का परिणाम हैं। तुम्हारा हित इसी में है गीघ्र स णीघ्र इस मिथ्या विचार को दूर कर दो। क्योंकि पग्लोव है और तुम्हारे न मानने से मिट नहीं सकता। पागल कहता है—सरकार जिस चिड़िया का नाम हूँ हम नहीं जानते। मगर जब वह उन्पात मचाना है तो पागलमान में बन्द कर दिया जाता है और बाढ़ा का मार मार कर उसकी अवन दुरस्त का जाती है। जब उसकी अवन ठिकान आती है तो वह मान खना है कि सरकार है। यही बात तुम्हारे सम्बन्ध में होगी

(१)

कर्मों यद्यपि जड़ हैं तथापि चेतना का मसम पाकर वे उनमें फल देने की शक्ति उत्पन्न हो जाती है। जम पक्षीम में मस्ती पाना कर देने की शक्ति है गराब में पागल बना देने की शक्ति है दूध में पुष्टि की शक्ति है यसे ही कर्मों में शुभ अनुभव फल देने की शक्ति है।

(२)

जम नगी के प्रवाह में कोई भी जल बिंदु एक जगह स्थिर नहीं रहता तथापि प्रवाह स्थिर हो इसी प्रकार कर्मों का प्रवाह अनादि है। पुराने कर्म स्थिति का परिपाक होने पर अपना अनुभव फल देकर अलग हो जाते हैं और नये कर्म घेधते रहते हैं। अतएव कर्मों की परम्परा अविनाश

जल रहो है । तब भी एक कम अनादि काल ने नहीं है सिर्फ
कम प्रकाश आदिवासी है ।

(८)

जब को- व्यक्ति जिसे न भी गगन उधार ले जाता
ह और पराग धुका कर फिर वही भी न जाता है । फिर कुछ
देता है और फिर कुछ न जाता है । इस प्रकार पुराना जग
चुकाता चमत्ता है और नया न चमत्ता है और अपना माता
चाहूँ रहता है इस तरह जीव तब कम उदात्त करता
जाता है और पुराना आगता जाता है ।

(९)

भादया ! पुण्य और पाप की शक्तियाँ मगान न दोगी
जबदस्त शक्तियाँ हैं । मगान बल सबत हा, यन्त्र बदल सराव
हो, आभूषण भा ताहा ता बल सबत हा किन्तु पुण्य और
पाप का नहीं बल सबत । उनके कम शक्तिवाद और अमिट हैं ।

(१०)

पुन ज म क सत्कार अवश्य ही आत्मा मे शक्ति रहते
हैं और और वतमान जीवन बहुत कुछ उर्ध्व सहायक न प्रमा-
वित एवं मचातिन होता है ।

(११)

फोनोग्राफ बाज की सूझी में राग भरा हुआ है ।
किन्तु वह यो अनायास नहीं निकलती । बाजे में सारी भरी

जानो है मुई लगाई जाती है । तब उसमें म धमा न आयाज
 निरुलता है जम गाने वात न गार्द भी । चूहाम वह आयाज
 जमा न हाता तो सुद लगान पर भा वृक् म निरुलती । इमा
 प्रकार अपन भीतर भा पद्वन नम की और उसम भा पद्वन
 जम की अनन घटनाजा क मन्दार जमा है । जम ज । निमित्त
 मित्त ह उमा प्रवार उाका म्मरण आता है ।

(१)

जम बीज और वन का परम्परा अनादिता म चला
 आ रहा है उसी प्रकार द्रव्य नम और भाव की परम्परा भा
 अनादिताल स चला आ रही है अगर मिया राज का जला
 निया जाय ता अनादि नान स चली आने वाला प म्मरा म म
 हा जाती है । इसी प्रकार कर्मों का परम्परा का भा तपस्या
 आदि की आग मे भस्म किया जा सकता है ।

(१२)

जम गटी का एन बीर साया जाना है ता वह पद
 में जाकर रस रक्त मास अस्थि मज्जा वाय आदि क रूप
 म परिणत होता है उसी प्रकार आप जा हिमा करत ह थूठ
 मात्त ह चोरी करत ह, दूसरो का अहित सोचत ह, परम्परा
 की तरफ बरो नीयत से ताकने ह, क्रोध मान, माया लाभ
 करत ह, ता इन सब स सात या आठ कर्मों का बध
 ही होता ह, ठीक उसी प्रकार जस आपकी

पर भी भाजनसे रस, रक्त मास बनत ह । किसी के न समझन के कारण कर्मों का बंध रुक नहीं सकता ।

(१४)

जैसे किसी-किसी दवा का प्रभाव तीन वर्ष तक रहता है, अमूक गिराब का नंगा अमूक समय तक रहता है, इसी प्रकार कर्मों का प्रभाव भी भिन्न-भिन्न समय तक रहता है ।

(१५)

जीव अपने किय कर्मों के फलस्वरूप ही नाना प्रकार की दुःखमय या नियो म भटका है और भटकता है । या किसी राजा महा तब कि इन्द्र की भी गति नहीं कि वह किसी का दुःखति मे भज सक । न कोई किसी को सुगति दे सकता है और न दुःखति द सकता है । अपने-अपने कर्म ही जीवों को सुगति-दुःखति के पात्र बनात ह ।

(१६)

भाइयो ! तुम्हें परलोक की यात्रा करनी है आप जहाँ जाना चाह वही जा सकते हैं । इसके लिए कोई रोक्डोक नहीं है । मगर तीसरे दर्जे का टिकिट लेकर अगर दूसरे या पहले दर्जे में बठना चाहत तो नहीं बठ सकेंगे । रेलवे की यात्रा में बढाचित् पोल चल जाती है, मगर परलोक की यात्रा में पोल नहीं चल सकती । वहा तो जिस दर्जे का टिकिट खरीदेंग उसी दर्जे में जाना ही पडगा । अतएव अगर आपकी इच्छा प्रथम

या द्वितीय दर्जे में जान की हा ता आपका पहल ही ध्यान देना चाहिये । पहले ही उसका मूल्य चुकाना चाहिए । वह मूल्य क्या है ? रुपया और पसा में वह मूल्य नहीं चुकाया जाता । वह दान त्याग, तप व्रत, सयम, नियम आदि के रूप में चुकाया जाता है । निश्चित समया, तगिर भी सदह मत रक्खा कि जसा करोग वसा भराग ।

(१७)

कर्मों के जग उड-वड जनवान भी दुबल बन जात ह उनके आगे किसी की नहा चुलती । कम क्षण भर में राता का रक और रक को राजा बना देत ह । वास्तव में कर्मों की गति बड़ी निश्चित है । इन कर्मों ने महान स महान पुरुषों के साथ भी रियायत नहीं की । रामचंद्र जस मर्यादा पुरुष को मताया भगवान् ऋषभ देव से भी बदला लिया और महावीर स्वामी को भी कष्ट पहुचाया । जत्र ऐसे लाकोत्तर महापुरुष भी नूरता स नहीं बक सकत ता साधारण मनुष्य की ता बात ही क्या है ?

(१८)

किसी भा ताथकर, अवतार, पगम्बर की ताकत नहीं कि उह बिय हुए कर्म का फल न भोग । जा मिच साधना उसके मुह में जलन हुए रिना नहीं रहगी । कोई शराब पी ले और चाहे कि नगा न आन यह कमी हा सकता है ? भाई इस निपय में किसी की भी नहीं चलती है । कोई कहे कि यह

बड़ आदमी है इन्हें गुनाह नहीं लगता, परन्तु गुनाह उसको ना क्या लगता आप का भी नहीं छाड़ने वाला है । जहर अपना काम करेगा और शर्मित अपना काम करेगा । यह भरुजी हो या बालाजी हा पीर हा या ओर नाई हा, किसी का भी ताकत नहीं कि गुनाह करके वह सब कि म उसका फल नहीं भोगेगा । कर्मों के आग न गनिजी की चलती है न मूरजगी की चलती है ।

(१६)

काइ अगाधार्ण व्यक्ति हा या साधारण आदमी है । मल ही तीयवर ही क्या न हो यदि उसने पहले अशुभ कर्म उपाजन किये ह तो उन्हे भोगना ही पडता है । ममत्त्व का यहि दोष गुनाह की बात कर्मों के आग नहीं चल सकती । अच्छे काम कराग अच्छा फल पाजाग बुरे काम करोगे बुरा फल मिलेगा । काम करना तुम्हारी इच्छा पर निर्भर है । मगर फल भोगना इच्छा पर निर्भर नहीं है । शराब पीना या न पीना मनुष्य की मर्जी पर है मगर जो पी रगा, उसका मतवाला होना या न होना उसकी इच्छा पर निर्भर नहीं है । उसकी इच्छा न होन पर भी उस मतवाला होना पडगा । इसलिए मैं बार-बार कहता हू कि ग्यानी हाथ मत जाना ।



